ओ३म्

महर्षि पाणिनि-प्रभा

सृष्टि संवत् १,९७,२९,४९,११३ | संयुक्तांक अप्रैल – जून, २०१२ | वर्ष ६, अंक–२ | वैशाख–ज्येष्ठ, वि.सं. २०६९

सम्पादिका
आचार्या नन्दिता शास्त्री चतुर्वेदी
मो० - 9235539740

◆

सहसंपादिका
डा० प्रीति विमर्शिनी
मो० - 9235604340

◆

प्रकाशक
पाणिनि कन्या महाविद्यालय
पो० - महमूरगंज, तुलसीपुर,
वाराणसी– 221010 (उ०प्र०)
फोन : (0542) 6452340
6544340

◆

पत्रिका मूल्य
एक प्रति : 25/-
वार्षिक : 150/-
आजीवन : 1500/- (दस वर्ष)

प्रभा–रश्मयः

1. **वेद-वाणी–** मनुष्य निर्माण की प्रक्रिया– – आचार्या नन्दिता शास्त्री 2–4
2. **सम्पादकीयम् –** शास्त्रार्थ का रूप ... – आचार्या नन्दिता शास्त्री 5–9
3. **इतिवृत्तम् –** – डा. प्रीति विमर्शिनी 10–12
4. **वैदिक ज्योतिष और धर्मशास्त्र–** – आचार्य हरिहर पाण्डेय 13–16
5. **उपासना क्यों और कैसे –** – प्रो. चन्द्र प्रकाश आर्य 17–21
6. **ब्राह्मण! सावधान –** – डा. सम्पूर्णानन्द 22-25
7. **वर्त्तमान सामाजिक परिस्थितियों में ''सत्यार्थ प्रकाश'' की उपयोगिता –** – प्रतिभा आर्या 26–29
8. **डा. जस्ट की आहार चिकित्सा–** – गणपति सिंह 30–32
9. **स्वतन्त्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका –** आशा रानी व्होरा 33–35
10. **हम भारत से क्या सीखें –** – प्रो. मैक्समूलर 36–38
11. **अर्जुनरावणीयम् –** – डा. विजयपाल शास्त्री 39–40

यह पत्रिका sangamanee.com पर आनलाईन उपलब्ध है।

◆

वेद-वाणी

मनुष्य निर्माण की प्रक्रिया–

पृथग्रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवति संसमृद्ध्या।
एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलग इव वस्त्रा॥

(अथर्व. 12/3/21)

यह अथर्ववेद का मन्त्र है, इसका देवता ओदन है, ओदन पके चावल को कहते हैं। उन्दी क्लेदने धातु से यह शब्द बनता है "**ओद्यते क्लेद्यते यत्तत् ओदनम्**" पानी डालकर इसे पकाते हैं उबालते हैं इसलिये इसे ओदन कहते हैं। वेद में ओदन को ब्रह्म कहा है- **ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा** परमेश्वर के लिये भी ओदन शब्द का प्रयोग आता है क्योंकि वह रस स्वरूप है और मनुष्यों के द्वारा वह भक्ति रस से सिञ्चित होकर प्राप्त किया जाता है।

प्रस्तुत मन्त्र में इन चावलों के लिये पशु शब्द का प्रयोग किया है और कहा है कि ऐसे पशुओं (चावलों) के बहुत से रूप और प्रकार हैं लेकिन वे सभी ऊपर का छिलका उतार देने पर एक जैसे सफेद दिखने लग जाते हैं। आगे मन्त्र में आदेश दिया कि इनके ऊपर की लोहिनी त्वचा अर्थात् रक्ताभ (लाल जैसी आभा वाले) छिलके को निकाल कर इन चावलों को उसी प्रकार चमका दे जैसे कोई धोबी मैले वस्त्रों को पत्थर से कूट पीटकर साफ कर देता है।

अथर्ववेद में अन्यत्र तण्डुल को गौ उसके कण को अश्व और छिलके को मशक अर्थात् मच्छर कहा है क्योंकि वह मच्छर के समान नष्ट करके उतारने योग्य है– **अश्वाः कणाः गावस्तण्डुलाः मशकास्तुषाः** (अथर्व. 11/3/5) यह वेद का प्रमाण है। यहाँ गाय को तण्डुल कहा है क्योंकि गाय के दुग्ध घृतादि के समान तण्डुल भी आबालवृद्ध सर्वजनोपयोगी सात्त्विक सुपाच्य बल बुद्धि-वर्धक मनुष्य का सहज आहार है। पशुओं में यदि किसी से इसकी तुलना की जा सकती है तो वह गाय से गाय के दूध से ही की जा सकती है। मन्त्र में चावल के लिये पशु शब्द का प्रयोग इसी हेतु से है।

मनुष्यों को भी वेद में पशु कहा है- **तवेमे पञ्च पशवो विभक्ताः गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः**। (अथर्व. 11/2/9) इस मन्त्र में पाँच मुख्य पशुओं को गिनाया है जिसमें गाय, घोड़ा, बकरी के साथ पुरुष (मनुष्य) को भी पशु कहा है। **पश्यतीति पशुः** शिशु अवस्था में बालक कुछ भी कहने करने में असमर्थ होकर मूक पशु के समान केवल टक्-टक् देखता रहता है और बिना कुछ सिखाये मनुष्य के समान आचरण

करने में भी असमर्थ होता है इसलिये मनुष्य को भी पशु कहा है। जो व्यक्ति शास्त्रों में आये पुंल्लिङ्ग प्रयोगों को देखकर यहाँ स्त्री का ग्रहण नहीं है यह कहते हैं और उसे अनेक अधिकारों से वञ्चित करते हैं साथ ही गृहस्थ धर्म के मन्त्रों में पुंल्लिङ्ग का प्रयोग होने के कारण पुत्र प्राप्ति की कामना की गई है आदि कहते हैं उनके अनुसार पुरुष ही जन्मजात पशु होते हैं स्त्रियाँ नहीं यह भी मानना पड़ेगा। अस्तु।

इस मन्त्र में पशुओं अर्थात् मनुष्यों के विभिन्न प्रवृत्तियों के कारण उनके पृथक्-पृथक् बहुत से रूप हैं यह कहा है। **कर्म वैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम्** (सांख्य द. 6/41) अर्थात् कर्मों की विचित्रता, प्रवृत्तियों की विचित्रता से सृष्टि में विचित्रता है यह सांख्यदर्शन का सूत्र है। कोई सत्वगुण प्रधान है कोई रजोगुण तो कोई तमोगुण। ऐसे इन पशुरूप बालकों को आचार्य संस्कारगत व्यवहारगत अनुशासन जनित समृद्धि से ज्ञान से उन्हें एकरूप दर्शनीय मनुष्य बनाता है। उनकी जो लोहिनी रजस्तमोमयी त्वचा है बाह्य अज्ञान का कुसंस्कारों का आवरण है जिससे वह आच्छादित है (त्वच संवरणे) उसे वह अपने पास अपने अन्तेवासित्व में रख कर पृथक् कर दे। और जिस प्रकार **मलगः** धोबी (मलं गमयतीति मलगः) वस्त्रों को **ग्रावा** पत्थर से कूट पीट कर चमका देता है उसी प्रकार आचार्य बालक को यथावश्यक ठोंक पीटकर उत्तम आचारवान् संस्कारवान् विज्ञानवान् बना सद्गुणों से सुभूषित कर शोभायमान कर दे यह कहा है।

गुरुकुलीय वैदिक शिक्षा में दण्ड का अनुशासन का बहुत महत्त्व है। शिष्य का अर्थ ही है जिसे अनुशासन में रखा जाये **शासितुं योग्यः शिष्यः** और वह अनुशासन दण्ड के द्वारा होता है। शिक्षा की समाप्ति पर स्नातक बन जाने के बाद यही बालक एक शिष्ट नागरिक कहलाने लगता है।

संस्कृत में डण्डे को दण्ड कहते हैं इसीलिये अनुशासन में दण्ड का यानी डण्डे का महत्वपूर्ण स्थान है। जो बालक इस दण्ड अनुशासन का पालन नहीं करता उसे उद्दण्ड (दण्डादूर्ध्वम्) कहा जाता है। पंजाबी में एक लोकोक्ति है– **डण्डा पीर है बिगड़ियाँ तिगड़ियाँ दा**। इस दण्ड के द्वारा अनुशासन के द्वारा इन्द्रियों का दमन किया जाता है– **दमनात् दण्डः**। यही नहीं राजा का राज्य भी इसी दण्ड पर आधारित होता है–

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्त्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः॥
(मनु. 71/9)

यह मनुस्मृति का श्लोक है इसमें कहा है दण्ड ही प्रजाओं पर शासन करता है यही सबकी रक्षा करता है। प्रसुप्त (सोए हुए) मनुष्यों को यही जागृत करता है इसलिए विद्वान् लोग दण्ड को ही धर्म कहते हैं।

आज बहुत से लोगों को आपत्ति है बच्चों को दण्डित क्यों करते हैं? और अब तो सम्भवतः शासन का भी आदेश हो गया है

कि कोई अध्यापक किसी बच्चे को दण्ड नहीं दे सकता पर वैदिक शिक्षा में दण्ड को निर्माण का आधार माना गया है।

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः॥

यह पातञ्जल महाभाष्य (8/1/8) में उद्धृत श्लोक है। इसमें कहा गया है गुरुजन अमृत से भरे हाथों से (निर्माण की भावना से) बच्चों का ताडन करते हैं विष से सिञ्चित हाथों से नहीं। बच्चों को किसी प्रकार नुकसान पहुँचाना दण्ड देने का उद्देश्य कथमपि नहीं है बल्कि उनमें सद्गुणों का विकास करना है जो कि ताडन के द्वारा ही संभव है केवल लालन करने से तो उनमें दोषोत्पत्ति की ही संभावना है। विद्यार्थियों को यथावश्यक दण्ड देने के कारण ही आचार्य को जहाँ बालक के लिये सोमरूप ओषधि रूप पयोरूप कहा है वहीं उसे मृत्युरूप भी कहा है–

आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः।
(अथर्व. 11/5/14)

वेद में बालक को मनुष्य बनो और अपने अन्दर दिव्यता को उत्पन्न कर देव बनो कहा है साथ ही आर्य बनो श्रेष्ठ बनो यह भी कहा है। यही नहीं मनुष्य बन कर सारे संसार को आर्य बनाओ **कृण्वन्तो विश्वमार्यम्** (ऋ. 9/63/5) यह भी कहा है। आर्यों की अर्थात् श्रेष्ठ मनुष्यों की पहचान आठ गुणों से की गई है–

शान्तस्तितिक्षुर्दान्तश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः।
दयालुर्दाता नम्रश्च आर्यः स्यादष्टभिर्गुणैः॥

जो शान्त हो तितिक्षु (त्यागी, सहनशील) हो सत्यवादी, जितेन्द्रिय, दयालु, दाता, विनम्र होने के साथ-साथ दान्त हो जिसके ऊपर दमन किया गया हो अथवा जो अपनी इन्द्रियों का दमन करने में स्वयं समर्थ हो उसका नाम आर्य है श्रेष्ठ है। जो कि अध्ययन काल में दण्ड से अनुशासन से ही संभव है चाहे वह माता-पिता करें या आचार्य। वे विद्यार्थी सौभाग्यशाली हैं जिनके माता-पिता आचार्य कठोर हैं उन्हें दण्ड देते हैं क्योंकि वे निर्माण की भावना से युक्त हैं।

मन्त्र के अनुसार यह निर्माण की प्रक्रिया चावल के समान होती है जैसे चावल कहीं बोया जाता है फिर उसे उखाड़ कर कहीं अन्यत्र रोंपा जाता है उसी प्रकार बालक भी कहीं जन्म लेता है फिर उसे वहाँ से अन्यत्र गुरुकुल में भेजा जाता है फिर वहाँ जैसे पौधा बढ़ता है फलता है पकता है अन्त में उसके छिक्कल को कूट-पीट कर निकाल दिया जाता है और वह अपने रूप में प्रकट हो जाता है। उसी प्रकार बालक का भी निर्माण होता है वह आचार्य कुल में पलता है, विकसित होता है, ठोंक पीट कर एक सम्पूर्ण युवा मानव बन कर तैयार होता है। यदि वह अन्त तक आचार्य के अनुशासन में पूर्ण श्रद्धा व विनम्रता के साथ बना रहता है। यही मनुष्य के सम्पूर्ण निर्माण की प्रक्रिया है। ●

– आचार्या नन्दिता शास्त्री चतुर्वेदी

सम्पादकीयम्

जी-न्यूज चैनल द्वारा आयोजित एक वीडियो कान्फ्रेंस

महिलायें भी कर्मकाण्ड करा सकती हैं–

पिछले दिनों एक चर्चा छिड़ी थी महिलाओं को कर्मकाण्ड कराने का अधिकार है या नहीं। इलाहाबाद के न्यायालय में यह विवाद गया था पुरुषों की तरह अब महिलायें भी घाट पर महामात्र का क्रियाकर्म कराने लगी हैं जो कि उचित नहीं है यह पुरुष महामात्रों व पण्डितों का कहना था पर न्यायालय ने महिलायें भी सभी कर्मकाण्ड करा सकती हैं इसके समर्थन में अपना अन्तिम निर्णय अप्रैल मास में दे दिया तो पण्डित समाज में एक बार फिर खलबली मच गयी। इसी क्रम में जहाँ काशी में अपने विद्यालय से अनेक बार मणिकर्णिका, हरिश्चन्द्र आदि घाटों पर अन्त्येष्टि संस्कार कराते, विद्यालय में कन्याओं का यज्ञोपवीत, वेदारम्भ संस्कार, कन्याओं द्वारा विवाह, मुण्डन, नामकरण, गृहप्रवेश आदि संस्कार कराते रहने की सूचना प्रसारित होते रहने के कारण जब मेरे पास जी-न्यूज चैनल के अधिकारी जन आये और इस सम्बन्ध में मेरे सप्रमाण सकारात्मक विचार जाने तो सायंकाल **पण्डित अशोक द्विवेदी** के साथ जो कि उस समय नोएडा में थे उनके साथ वीडियो कान्फ्रेंस कराने के लिये हम आपके विद्यालय में आ रहे हैं कह कर चले गये मैंने इसे हल्के में ही लिया था ठीक है जो आयेंगे जवाब दे दिया जायेगा।

फिर रात्रि 9 बजे गहमागहमी शुरू हुई और हमारा परिचय देते हुए एंकर ने पण्डित जी से पूछा कि पुरुषों के समान महिलायें भी कर्मकाण्ड करा सकती हैं इस विषय में आपका क्या अभिमत है? उन्होंने पाणिनि कन्या महाविद्यालय का नाम सुनते ही हाँ! मैं उस विद्यालय को जानता हूँ उसकी संस्थापिका आचार्या **डॉ. प्रज्ञा देवी जी** को भी जानता हूँ, वे मेरी सहाध्यायिनी रही हैं मैंने भी पूज्य गुरुवर्य **श्री पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी** के दर्शन किये हैं उनसे पढ़ा है, 40 वर्षों से यह कन्या महाविद्यालय चल रहा है मुझे पता है। ये लोग सब कर्मकाण्ड कराती हैं, करा रही हैं ठीक है पर यह शास्त्रसम्मत नहीं हैं, कन्यायें मन्त्रों का उच्चारण नहीं कर सकतीं। उत्तर में मेरे यह कहने पर कि नारी को वेद में ब्रह्मा कहा गया है– **स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ** (ऋ. 8/33/19) यह वेद का वचन है। श्रौतग्रन्थों में ब्रह्मा अध्वर्यु होता उद्गाता ये चार ऋत्विक् कहे गये हैं जो बड़े-बड़े यज्ञों को सम्पन्न कराते हैं उनमें ब्रह्मा का स्थान सर्वोच्च होता है। वह चारों वेदों का ज्ञाता होता है उसी की अध्यक्षता में सम्पूर्ण यज्ञ सम्पन्न होता है। यही नहीं उसे **यज्ञस्य केतुः** (ऋ. 1/113/19) यज्ञ की पताका कहा है। वेद के शब्दों में पुरुष समाज उससे प्रार्थना करता है– **देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्**। (यजु. 8/43) हम मनुष्यों को देव बनाने के लिये तू हमें सुकृत का उपदेश कर तथा **भगवती हि भूयाः अधा वयं भगवन्तः स्याम** (अथर्व.

7/73/11) हे नारी! तू भगवती बन जा जिससे हम पुरुष भगवान् बन सकें आदि प्रार्थनायें की गई हैं। जहाँ परमेश्वर मैं इस कल्याणी वाणी का प्रवचन **जनेभ्यः** जन-जन के लिये कर रहा हूँ यह कहा है। **यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः** (यजु. 26/2) यजुर्वेद का यह मन्त्र इसमें प्रमाण है। तो क्या जन में स्त्रियाँ नहीं आतीं? उनके लिए वेद नहीं है? आदि अनेक प्रमाण सहित जब मैंने अपनी बात रखी तो वे कहने लगे– हाँ! हाँ! मुझे ये प्रमाण पता हैं पर यदि स्त्रियाँ मन्त्रोच्चारण करेंगी तो एक टेक्नीकल प्राब्लम है मेरे पूछने पर कि वह प्राब्लम क्या है? वे बोले, ऐसी स्त्रियाँ पुत्रवती नहीं होंगी सुनकर बड़ी हँसी आई, मैंने कहा– अपने महाविद्यालय से अनेक स्नातिकायें आचार्या बनकर निकल चुकी हैं वे सभी गृहस्थ आश्रम में जाकर पुत्रवती हैं जबकि वे गर्भावस्था से पहले ही नहीं गर्भकाल में भी मन्त्रोच्चारण व वेद का स्वाध्याय करती रही हैं, आज भी कर रही हैं।

फिर वे कहने लगे– असल में ये लोग आर्यसमाजी हैं इनसे पूछिये यदि ये कर्मकाण्ड का समर्थन कर रही हैं तो क्या ये संकटमोचन मन्दिर में जाकर हनुमान चालीसा और सुन्दरकाण्ड का पाठ करेंगी? क्या ज्योतिर्लिङ्ग में जाकर पूजा करवायेंगी? क्या विश्वनाथ मन्दिर में रुद्राभिषेक करवायेंगी आदि आदि। मैंने कहा यहाँ बात आर्यसमाज की नहीं हो रही है बात वेदों की हो रही है कि वेद इस सम्बन्ध में क्या कहता है मैंने वेद के प्रमाण दिये हैं यदि आप उनको काट सकते हैं तो काटिये अन्यथा आप जो कहेंगे वह मान्य नहीं होगा। सत्य तो यह है, वेद ईश्वरीय ज्ञान है, वेद स्वतः प्रमाण है उसको प्रमाणित करने के लिए किसी अन्य ग्रन्थ व शास्त्रीय वचन की आवश्यकता नहीं है। इस बात को स्वयं शंकराचार्य जी ने स्वीकार किया है–

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेन्न अन्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात्।

– वेदान्त द. 2/1/1

इस वेदान्त दर्शन के सूत्र का भाष्य करते हुए उपसंहार रूप में उन्होंने लिखा है– **वेदस्य हि निरपेक्षं स्वार्थे प्रामाण्यं रवेरिव रूपविषये। पुरुषवचसां तु मूलान्तरापेक्षम्। तस्माद्वेदविरुद्धे विषये स्मृत्यनकाशप्रसङ्गो न दोषः।**

अर्थात् वेद अपने विषय में बिना किसी की अपेक्षा किये स्वयं प्रमाण है जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश को प्रमाणित करने के लिये किसी प्रकाशान्तर की अपेक्षा नहीं है किन्तु मनुष्यों के वचन तो मूलान्तर की प्रमाणान्तर की अपेक्षा रखते हैं इसलिये वे परतः प्रमाण हैं। इस प्रकार वेद से विरुद्धविषय में मनुष्यकृत कोई स्मृति या शास्त्र यदि अनवकाश सिद्ध होता है यह दोष उत्पन्न होगा यदि कोई कहे तो यह ठीक नहीं। तो क्या आप आद्य शंकराचार्य से भी ऊपर हैं? इस पर वे बोले– मैं इनकी बात से सहमत नहीं हूँ मैं तो वही मानूँगा जो निर्णय सिन्धु धर्मसिन्धु में लिखा है। हाँ! यदि सभी शंकराचार्य मिलकर निर्णयसिन्धु को गलत सिद्ध कर दें और स्त्रियों को वेदाध्ययन, मन्त्रोच्चारण का अधिकार है इसे प्रमाणित कर दें और उसमें अपेक्षित परिवर्त्तन कर दें तो हम इनकी बात मानने के लिये तैयार हैं अन्यथा नहीं। मैंने फिर कहा– क्या शंकराचार्य भगवान् से ऊपर हैं? क्या

निर्णयसिन्धु धर्मसिन्धु वेद से भी ऊपर है? और क्या वर्त्तमान शंकराचार्यों को आप आद्य शंकराचार्य से भी अधिक मान्य और प्रतिष्ठित मानते हैं? इस बीच कई बार वे यह भी बोले असल में ये लोग आर्यसमाजी हैं दयानन्द को मानते हैं जिनको जन्म लिये स्थापित हुए अभी मात्र डेढ़-दो सौ वर्ष हो रहे हैं। मैंने फिर कहा– देखिये! आप मुद्दे से हट रहे हैं बात को विषयान्तर कर रहे हैं यहाँ बात आर्यसमाज और दयानन्द की नहीं वेद और भगवान् की हो रही है। मैं आर्यसमाज और दयानन्द को यदि मानती हूँ तो इसलिये क्योंकि उन्होंने वेद की बात की और अपनी बात को वेद से पुष्ट किया वेद के अनुकूल होने पर ही मेरी बात को मानना अन्यथा नहीं यह उनका स्पष्ट कथन था। अस्तु।

फिर फिर वे इस बात पर जोर देने लगे कि यदि मैं कर्मकाण्ड का समर्थन करती हूँ तो इनसे पूछिये क्या ये मन्दिर में सुन्दरकाण्ड का पाठ करेंगी? नहीं करेंगी क्योंकि ये आर्यसमाजी हैं। तब मैंने कहा– हाँ! हम सुन्दरकाड का पाठ नहीं करेंगी, और करें भी क्यों? क्या आप को नहीं पता है सुन्दरकाण्ड रामायण का एक भाग है, रामायण एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है जिसकी रचना महाकवि वाल्मीकि ने की है जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र जी का वर्णन है। मैं पूछना चाहती हूँ कि उस निराकार सर्वव्यापक जगन्नियता परब्रह्म परमेश्वर की स्तुति में किसी ऐतिहासिक ग्रन्थ के एक भाग के पाठ करने का आखिर क्या औचित्य है? आप ही बतायें अन्यथा हम वेदमन्त्रोच्चारण को छोड़ कर किसी मनुष्यकृत सुन्दरकाण्ड, हनुमान चालीस, विष्णुसहस्त्रनाम स्तोत्र आदि का पाठ नहीं करेंगी। इस पर कोई उत्तर न देकर वे कहने लगे ये लोग मन्त्रों को गा-गाकर बोलती हैं, इन्हें मन्त्रोच्चारण नहीं आता, ये 100 मन्त्र भी सही ढंग से नहीं बोल सकतीं। मैंने कहा– आप 100 मन्त्रों की बात करते हैं मेरे पीछे ब्रह्मचारिणियाँ बैठी हुई हैं वे आपको 100 नहीं चार सौ मन्त्र पढ़कर अभी तत्काल सुनायेंगी बताइयेगा कहाँ गलत है? बात यहीं पर समाप्त हो गई क्योंकि वे मेरे बगल में मेरे सामने नहीं बैठे थे जी-न्यूज चैनल के माध्यम से हम हेडफोन लगाये केवल एक दूसरे की बात सुन रहे थे और उत्तर दे रहे थे।

अखिल भारतीय ब्राह्मण महासम्मेलन–

इसके बाद अप्रैल मास में ही 28-29 ता. को एक अखिल भारतीय ब्राह्मण महासम्मेलन का आयोजन दिल्ली के रामलीला मैदान में था जिसमें मुझे भी काशी से ब्राह्मण महिला प्रतिनिधि के रूप में वक्तृत्व देने के लिये आमन्त्रित किया गया था। सम्मेलन के दूसरे दिन ब्राह्मण महिला सम्मेलन का आयोजन था **पं. कमलाकान्त उपाध्याय** राष्ट्रीय महासचिव केन्द्रीय ब्राह्मण महासभा वाराणसी ने मुझे आमन्त्रित किया था। दूसरे दिन कार्यक्रम स्थल पर पहुँचने पर देखा मंच पर पुरुषों का एकाधिपत्य है किसी प्रकार मंच को उनके आधिपत्य से मुक्त कराया गया क्योंकि मुझे 11 बजे से महिला सम्मेलन आरम्भ होगा यह सूचना मिली थी और एक घण्टा आधा घण्टा करते-करते 3 बजे के बाद लगभग 4 बजे वह भी बीच में ही कुछ वक्ताओं को थोड़ी देर के लिये रुकवाकर यह सम्मेलन कराया गया। जिसमें 5-6 महिलायें वक्त्री के रूप में उपस्थित थीं।

मैंने अपने वक्तव्य में सर्वप्रथम आयोजकों का धन्यवाद किया कि इतने बड़े ब्राह्मण महाकुम्भ में आपने अर्धाङ्ग को याद रखा और उन्हें भी यहाँ आने व अपने विचार रखने का अवसर प्रदान किया। अस्तु। आज ब्राह्मण समाज अपनी दुरवस्था से चिन्तित है, उसे उच्च पदस्थ अन्य जातियों की अधीनता उनकी कृपापात्रता का दंश झेलना पड़ रहा है, अन्य दलित जातियों के आरक्षण से योग्यता होते हुए भी पिछड़ेपन को अंगीकार करना पड़ रहा है। एक समय था जब देश समाज में ब्राह्मणों का आधिपत्य था। पर कब? जब ब्राह्मण तपस्वी, वेदज्ञ, कुम्भीधान्य, अलोलुप थे जाति ब्राह्मण नहीं। **ब्रह्म अधीते वेद वा यस्स ब्राह्मणः** जो ब्रह्म अर्थात् वेद का अध्ययन करता उसी के प्रचार-प्रसार में अपना जीवन लगाता है वैदिक आचार-विचार का पालन करता है उसका नाम ब्राह्मण है। जो ऐसा होकर समाज को क्षत्रिय (राजा) को दिशा निर्देश करता था तब वह समाज का सिरमौर मुख माना जाता था और वेद के शब्दों में यह कहने का अधिकारी होता था–

न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन (अथर्व. 5/19) अर्थात् ब्राह्मण की गौ (वाणी) को मारकर उसकी आज्ञा का उल्लंघन कर कोई राष्ट्र में जीवित जागृत नहीं रह सकता। राजा का क्षत्रिय का वह स्वयं राज्याभिषेक करता था और कहता था कि आज से तुम इस सम्पूर्ण राज्य के सभी प्रजाजनों के स्वामी हो पर ध्यान रखना! तुम हम ब्राह्मणों के अधीश नहीं हो, **सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा** (यजु. 9/40) हम ब्राह्मणों का राजा तो वह सोम परब्रह्म परमेश्वर है। यह सब कुछ सतयुग, त्रेता, द्वापर तक चला किन्तु महाभारत के बाद आज से ढाई तीन हजार वर्ष पूर्व से ब्राह्मणों का पतन आरम्भ हो गया। वे भूल गये ब्राह्मण के साथ-साथ क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भी समाज के अभिन्न अंग हैं। यदि ब्राह्मण इस समाज का राष्ट्र का सिर है तो क्षत्रिय इस देश की भुजा हैं जो इस देश समाज के प्रहरी बनकर दिन-रात सीमा पर तैनात होकर हमारी रक्षा करते हैं। वैश्य इस समाज का उदर (पेट) हैं उनके बिना हम सब भूखे हैं नंगे हैं क्योंकि वाणिज्य कर्म समाज की आवश्यकता के अनुसार विभिन्न उद्योगों को स्थापित करना कृषिकर्म करना इनके अधीन है, देश की समृद्धि के ये मूल आधार हैं। इन सबको द्विज कहा जाता था ये सब गुरुकुलों में जाकर आचार्य के सान्निध्य में रह कर शिक्षा-दीक्षा को पूर्ण कर आचार्य की कुक्षि से दूसरा जन्म लेने के कारण द्विज कहलाते थे, ब्राह्मण भी द्विज बनने के बाद ही ब्राह्मण कहलाता था। चौथा शूद्र इस समाज का मूल आधार स्तम्भ माना जाता था। समाज में सबकी पूरी अहमियत थी सम्मान था समाज के सब अभिन्न अंग थे सबको सबकी आवश्यकता थी आज भी है। हम समाज में यदि दिखने लायक हैं तो इन चमार, लोहार, सोनार, दर्जी, धोबी, नाई, बढ़ई आदि शूद्रवर्ग की कृपा से हैं। ब्राह्मण यानी सिर समाज का कितना ही महत्वपूर्ण अंग हो पर वह बिना हाथ-पैर के लूला और लंगड़ा है, हम यह भूले गये। हमने पहले अर्धाङ्ग को काटा स्त्रियों को वेदाध्ययन के अधिकार से वञ्चित किया उन्हें अपवित्र मान वैदिक कर्मकाण्ड से पृथक् किया फिर शूद्रों को, फिर धीरे-धीरे क्षत्रिय, वैश्य सबको काट कर अलग कर दिया। इनका यज्ञोपवीत नहीं हो सकता, ये वेद नहीं पढ़ सकते कहा गया। ये भी मुर्गा बन कर

पण्डित जी के सामने हलाल होने के लिये बैठ गये। एकेश्वर पूजा के स्थान पर कोई गोबर गणेश की पूजा करा रहा है, कोई तुलसी शालिग्राम का विवाह करा रहा है, कोई हनुमान चालीसा पढ़ रहा है, कोई सुन्दरकाण्ड क्यों? क्योंकि इनको वेद पढ़ने ही नहीं सुनने का भी अधिकार नहीं है। और आज स्वयं समाज से कट गये समाज की सुविधाओं से वञ्चित होने लगे। आज यदि ब्राह्मण का महत्व कम हुआ है तो स्वयं अपने कर्मों से, अपने पैरों पर उसने स्वयं कुल्हाड़ा मारा है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है–

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्याद् अन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति।।

अर्थात् वेदों के अनभ्यास, वैदिक आचार के परित्याग, आलस्य तथा अन्न के दोष (श्राद्ध भोजन, मांस-मदिरा सेवन) से आज ब्राह्मण मत्यु के मुख में जा रहा है। हमें इन कारणों पर विचार करना होगा, सबको समाज का महत्वपूर्ण अंग मान कर सम्मान व अधिकार देना होगा तभी हम अपनी रक्षा व अपने अधिकार की बात कर सकेंगे। इस चिन्तन में हम महिलायें ब्रह्मवादिनी गार्गी, सुलभा, घोषा, मैत्रेयी बन कर आपके साथ हैं। एक बार फिर आयोजकों का धन्यवाद जिन्होंने अपने अर्धाङ्ग के महत्व को समझा और इस ब्राह्मण महाकुम्भ में उन्हें आमन्त्रित किया।

सुन कर सब बहुत गद्गद थे अरे आप अभी तक कहाँ थीं आपसे तो हमें बहुत पहले मिलना चाहिये था हमारा कार्य बहुत आगे बढ़ता। इसी प्रकार आप लोगों का आना जाना मिलना बना रहा तो हमें बहुत कुछ सीखने समझने को मिलेगा आदि आदि।

धर्म संस्कृति संगम काशी–

इसी प्रकार **धर्म संस्कृति संगम काशी** द्वारा आयोजित '**भारत की खुशहाली सुरक्षा एवं विश्वशान्ति में सर्वपन्थ समन्वय का महत्व**' विषय पर आयोजित संगोष्ठी में मुझे भी वैदिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के लिये बुलाया गया था। मैंने प्रथम आयोजकों को धन्यवाद दिया कि आपने सर्वधर्म शब्द न रखकर सर्वपन्थ समन्वय रखा है यह बहुत उचित है क्योंकि धर्म तो एक ही है और वह है वैदिक धर्म। और जहाँ तक भारत की खुशहाली सुरक्षा और विश्वशान्ति का प्रश्न है मैं तो इतना ही कहना चाहूँगी कि जब तक हम अपने मूल अध्यात्म और वेद से जुड़े रहेंगे हमें कभी भी अपनी बदहाली असुरक्षा या अशान्ति के लिये चिन्तित नहीं होना पड़ेगा। और मेरे से पूर्व वक्ताओं का यह कथन कि **संघे शक्तिः कलौ युगे** इसलिये आज सर्वपन्थ समन्वय का महत्व है मैंने कहा– **संगच्छध्वं संवदध्वम्** मिल कर चलो, मिलकर बोलो यह वेद का सृष्टि के आदि में दिया गया सन्देश सार्वकालिक है किसी युग विशेष के लिये नहीं। अस्तु। इस प्रकार कई चुनौती पूर्ण कार्यक्रम काशी में सम्पन्न होते रहते हैं– जिसमें पाणिनि कन्या महाविद्यालय सदैव गुरुजनों के आशीर्वाद से वैदिक सिद्धान्त की स्थापना में कभी चूकता नहीं है। ● **– आचार्या नन्दिता शास्त्री चतुर्वेदी**

इतिवृत्तम्

– डा. प्रीति विमर्शिनी

यह सत्य है कि मानव प्रकृति की सर्वोत्कृष्ट रचना है परन्तु इस कथन का आधार उसकी बाह्य संरचना नहीं अपितु मानव को मिला प्रकृति प्रदत्त वह दिव्य अधिकार रूपी उपहार है जिसके द्वारा किसी भी क्षेत्र अथवा स्थिति में उत्पन्न व्यक्ति पुरुषार्थ करके सभी क्षेत्रों में अपनी शक्ति एवं ज्ञान को असीम स्तर तक बढ़ाकर अनेक ऊँचाईयों को प्राप्त कर सकता है। वह दिव्य अधिकार स्वतः अपना विकास करते हुए संकल्प शक्ति के आधार पर शून्य से विराट् बनने का है जिसे वह शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक, कलात्मक एवं संवेदनशीलता आदि क्षेत्रों में विकसित होकर ही कर सकता है। यह स्वतः विकास का अधिकार मनुष्येतर अन्य किसी प्राणी को नहीं।

इस विकास रूपी अधिकार का बोध कुछ तो मानव स्वयं करता है तथा शेष शिक्षा के माध्यम से जो कि वर्त्तमान शिक्षा पद्धति कभी नहीं करा सकती और यही कारण है कि वर्त्तमान में मानव की सर्वोत्कृष्टता पर प्रश्नचिह्न लगने लगा है। मानव के सम्पूर्ण विकास का आधार प्राचीन आर्ष शिक्षा प्रणाली थी जो गुरुकुलों में होता था, आज भी वह विकास यदि संभव है तो गुरुकुलीय आर्ष शिक्षा प्रणाली से ही, इसी से मानव इस जगत् की अनमोल सर्वोत्कृष्ट रचना सिद्ध हो सकती है।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली का पुनः प्रतिष्ठापन हुआ साथ ही इसमें सर्वगुण सम्पन्न सुशिक्षिता नारी की मुख्य भूमिका होती है अतः कन्या गुरुकुलों की भी स्थापना की गई। 10 जुलाई 2012 को अपने विद्यालय में रोटरी क्लब के District governor **श्री अजय आगा जी** का शुभागमन हुआ कन्याओं को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि– **यदि कुछ दिन के लिये पुष्प विकसित करने हों तो गमले में पौधे लगाये जाते हैं कुछ वर्ष फलों का स्वाद लेना हो तो वृक्ष लगाये जाते हैं किन्तु यदि सदियों का निर्माण करना हो तो कन्याओं को शिक्षित किया जाता है शिक्षित कन्यायें शिक्षित सदियों का सृजन करती हैं, जो यहाँ इस विद्यालय में हो रहा है**। सच! आज के सन्दर्भ में भी यह कथन अप्रासंगिक नहीं। तभी तो आज भी लोगों का गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति के प्रति आकर्षण बना हुआ है। अस्तु।

बयालीस वर्षों से प्राचीन शिक्षण पद्धति तथा सांस्कृतिक आदर्शों को संरक्षण संवर्धन के साथ-साथ वर्त्तमान आधुनिक विषयों का प्रशिक्षण देने वाले इस विद्यालय में नवीन प्रवेश पूर्ण हो चुके हैं जिसमें- हिमांचल, महाराष्ट्र, जम्मू, बिहार आदि प्रदेशों की कन्यायें हैं। और अब.....

मेघों के गर्जन के साथ वर्षा की फुहारों के

आशीर्वाद के साथ नये उत्साह नई उमंग एवं नई आशाओं के साथ नये संकल्प के साथ जुलाई मास से नये सत्र का प्रारम्भ हुआ। कन्याओं के अन्दर व्याकरण के अध्ययन के साथ वैदिक सम्पूर्ण वाङ्मय एवं सिद्धान्तों का गहन ज्ञान हो तथा साथ ही अपना प्रचीन भारतीय इतिहास, वैदिक, गणित, आयुर्वेद, ज्योतिष, छन्द कल्पादि शास्त्रों का भी ज्ञान हो इस को ध्यान में रखते हुए **आचार्या नन्दिता शास्त्री जी** ने प्रवेशिका से आचार्य पर्यन्त (कक्षा 5 से एम.ए. तक) का पाठ्यक्रम बड़ी सूझ-बूझ से निर्धारित किया है।

कुछ उल्लेखनीय सहयोग–

पर्यावरण दिवस जून को जय श्रीकृष्ण संस्था की ओर से लगभग 40-50 तुलसी के पौधे लगाये गये तथा संस्था के संस्थापक **श्री संजीव अग्रवाल जी** ने एक वर्ष तक विद्यालय की सभी कन्याओं के लिये कम्प्यूटर एवं ऑबेक्स की शिक्षा निःशुल्क कराने की घोषणा की तथा प्रारम्भ भी हो गई, आप बड़े ही सृजनात्मक एवं सहयोगात्मक प्रवृत्ति के कार्यकुशल कर्मठ उत्साही युवा व्यक्तित्व हैं। इसी प्रकार विद्यालय की कन्याओं की उन्नति एवं सहयोग के बारे में सोचते एवं करते रहते हैं। इसी क्रम में **द्वितीय** उल्लेखनीय सहयोग मऊ के **श्री रामावतार शर्मा जी** जो अपनी कन्या का प्रवेश कराने हेतु आये और विद्यालय की आवश्यकताओं का कागज सामने पड़ा देखा उसमें सिलाई मशीन की आवश्यकता को पढ़कर कुछ ही दिनों में छः सिलाई मशीनों की पूर्ति कराई।

तृतीय विशिष्ट सहयोग जम्मू के श्री **विजय भातरा जी** का है। विगत 18 मार्च से 25 मार्च तक जम्मू में वेद प्रचार सप्ताह के कार्यक्रम में मैं गई हुई थी, वहाँ आप प्रतिदिन प्रवचन सुनने आते रहे जबकि आप स्वयं एक रिटायर्ड प्रोफेसर हैं पुनरपि आपकी विनम्रता एवं सरलता अनुकरणीय थी, आपने प्रभावित होकर विद्यालयीय कन्याओं हेतु पहले एक कन्या की बाद में प्रभु प्रेरित हो तीन कन्याओं की छात्रवृत्ति प्रेषित की।

इसी के साथ खरौरा के कार्यक्रम में **श्री सूरज सोनी जी** ने अपने तीन बच्चों का यज्ञोपवीत संस्कार आचार्या नन्दिता शास्त्री जी से सम्पन्न कराया उसी समय आचार्या जी के यह पूछने पर कि आप अपने बच्चों को गुरुकुल पढ़ने भेजेंगे? यदि नहीं तो आप गुरुकुल के तीन बच्चों को पढ़ाने का पुण्य कैसे अर्जित करेंगे? तत्काल उन्होंने मैं आपके महाविद्यालय की तीन कन्याओं को पढ़ाने का व्यय दूँगा यह घोषणा कर सबको आह्लादित कर दिया।

हम आप सभी के प्रति आभारी हैं परमपिता परमेश्वर आप सभी को यशस्वी स्वस्थ दीर्घ जीवन प्रदान करें तथा सभी प्रकार से सामर्थ्यवान् बनाये यही कामना है।

निर्माणाधीन पाणिनि मन्दिरम्–

आज से लगभग छः वर्ष पूर्व जिस पाणिनि मन्दिर की नींव रखी गई देखते-2 आप सबके सहयोग से, हैदराबाद के स्वतन्त्रता सेनानी **डॉ. नन्दनम् सत्यम्** जी की देखरेख में तथा **आचार्या नन्दिता शास्त्री** जी के अथक प्रयास से अब

पूर्णता की ओर अग्रसर है। कई महीनों से अन्दर सभागार हेतु पत्थर लाने का काम जो अतिव्यस्तताओं एवं किसी अनुभवी व्यक्ति के साथ न होने से नहीं हो पा रहा था उस कार्य को पूर्ण करवाया **डॉ. ब्रह्मानन्द चतुर्वेदी** जी ने। आपने अपने व्यस्ततम समय से कुछ समय इस पाणिनि मन्दिर हेतु अर्पित करके पिछले जून महीने में आचार्या नन्दिता शास्त्री जी के साथ मकराना जाकर दो दिन पत्थरों की कई खदानें देखकर बढ़िया पत्थर खरीदवाया। और अब अन्दर बड़ी तेजी से पत्थर लगाने का कार्य चल रहा है। सभागार के अन्दर कारीगरी का कार्य पूर्ण हो गया है, ऊपर गुम्बद का कार्य चल रहा है प्रभु की कृपा से वह भी शीघ्र पूर्ण हो जायेगा।

प्रचार यात्रायें–

जैसा कि आप सभी को विदित ही है कि विद्यालय कन्याओं को अध्ययनाध्यापन के साथ-साथ प्रायोगिक प्रशिक्षण भी बाहर वेद प्रचार यात्राओं के माध्यम से प्रदान करता है। विगत मासों में भी ऐसी कतिपय यात्रायें हुईं जो उल्लिखित हैं।

आर्य समाज रिहाड़ी कॉलोनी (जम्मू), मनेन्द्रगढ़ आचार्या **डॉ. प्रीति विमर्शिनी** आर्य समाज खरोरा (मध्य प्रदेश), अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन पानीपत, सामवेद पारायण महायज्ञ तपोवन देहरादून, श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास उदयपुर वैदिक संगोष्ठी **आचार्या नन्दिता शास्त्री**, चतुर्वेद पारायण यज्ञ (लखनऊ) **उमाभारती** वैदिक प्रशिक्षण शिविर मोगा (पंजाब) **प्रियङ्का शास्त्री**।

इन कार्यक्रमों में दो कार्यक्रम विशिष्ट उल्लेखनीय हैं– **प्रथम–** चतुर्वेद पारायण महायज्ञ लखनऊ यह यज्ञ अनन्य ऋषि भक्त आर्य विद्वान् **पं. मेधावी शास्त्री जी** के अनुव्रत सुपुत्र **श्री पं. अखिलेश जी लखनवी** ने अपने नवीन गृहनिर्माण के शुभ अवसर पर कराया, जिसे उत्तरमध्यमा प्रथम वर्ष की छात्रा **उमाभारती** के नेतृत्व एवं ब्रह्मत्व में मनीषा, विद्या, निधि, दिव्यकिरण, स्नेहा, सावित्री ने पच्चीस दिन में बड़ी कुशलता से सम्पन्न कराया।

द्वितीय– मोगा पंजाब **श्रीमती इन्दुपुरी जी** ने वैदिक प्रशिक्षण शिविर आठ दिवस का आयोजित किया था जिसे **प्रियङ्का शास्त्री** के नेतृत्व में ब्र. जागृति एवं सुधा ने पूर्ण कुशलता एवं भव्यता के साथ सम्पन्न कराया सभी ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। इसी प्रकार डी.ए.वी. कॉलेज राँची में वैदिक प्रशिक्षण शिविर **सरला शास्त्री** के कुशल नेतृत्व में ज्योति आर्या, निधि, विद्या एवं मनीषा ने सफलता पूर्वक सम्पन्न कराया। ये सभी देवबालायें पूर्ण विदुषी बनें तथा समाज में व्याप्त अज्ञानान्धकार कुरीतियों एवं रूढ़िवादिताओं को दूर कर अपने प्रिय भारत को भा-रत बनायें यही प्रभु से कामना तथा हमारा आशीर्वाद है।

सुधी पाठकवृन्द! इस प्रकार यह पाणिनि कन्या महाविद्यालय निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर है, तथा अनेक उत्कृष्ट भावी योजनाएँ भी हमारे मस्तिष्क में हैं जिसे आप सबके स्नेहिल सान्निध्य, सहयोग, सम्बल एवं आशीर्वाद से पूर्ण करना है तथा इस महाविद्यालय को उन्नति के उच्च शिखर तक ले जाना है, परमपिता परमेश्वर हम सबको दीर्घ जीवन सामर्थ्य एवं शान्ति दें यही प्रार्थना है क्योंकि हम लोगों का जीवन विद्यालय हेतु ही समर्पित है।

●

वैदिक ज्योतिष और धर्मशास्त्र

– आचार्य हरिहर पाण्डेय

[प्रस्तुत आलेख **आचार्य हरिहर पाण्डेय** द्वारा लिखित ग्रन्थ '**हमारा ज्योतिष और धर्मशास्त्र**' से गृहीत है। 432 पृष्ठों का यह ग्रन्थ **उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ** द्वारा सन् 1989 में संस्थान के तत्कालीन निदेशक **प्रभात कुमार मिश्र जी** द्वारा संस्तुत होकर प्रकाशित हुआ था। इसके बाद द्वितीय संस्करण 2006 में प्रकाशित हुआ था। वैदिक ज्योतिष से जुड़ कर लिखा हुआ यह ग्रन्थ जन सामान्य से लेकर ज्योतिर्विदों तक के लिये ध्यातव्य है मन्तव्य है। **– सम्पा०**]

मानव का सबसे बड़ा बल मनोबल है, मनोबल की सर्वोत्तम स्थिति शिव संकल्प है और वैदिक ज्योतिष इसका धाम है। भीरु मनुष्य के लिए सारे काल अशुभ हैं। वह छोटे से कार्य का आरम्भ करने में भी शंकाकुल रहता है किन्तु ज्ञानी पुरुष महारम्भ के बाद भी निराकुल रहता है। मनुष्य का मन ही बन्ध और मोक्ष का हेतु है। वैदिक ज्योतिष मोक्षप्रद है। उसमें कोई काल अशुभ नहीं है आधुनिक पुराण और ज्योतिष पूरे कलियुग को अशुभ और पापमय मानते हैं परन्तु वेदानुयायी साहित्य में राजा ही युग है और युगों का शुभत्व अशुभत्व राजा एवं प्रजा के आचार और गुणों पर आश्रित है। संवत्सर जगत् की आत्मा और विष्णु स्वरूप सूर्य से उत्पन्न है अतः वेद में कोई वर्ष अशुभ नहीं है। ऋतुयें विष्णुरूपी संवत्सर की अङ्ग हैं, गुणवती हैं, सुन्दर हैं, मनोहारिणी हैं इसलिए वे कभी अशुभ हो नहीं सकतीं। प्रकाश और अन्धकार, दोनों गुणों के धाम हैं, हितकारी हैं, प्रभु ने सोच कर बनाये हैं इसलिए दोनों अयन (यान) शुभ हैं, दोनों पक्ष शुभ हैं, सारे मास शुभ हैं, सारी तिथियाँ शुभ हैं और अहोरात्र के 30 विभाग अर्थात् सारे मुहूर्त शुभ हैं। बड़े ही प्रमोद का विषय है कि वैदिक साहित्य में इन सब के नाम ऐसे चुन-चुन कर रखे गये हैं जिन्हें सुनकर चित्त गद्गद् हो जाता है और इनका शीर्षक है–

यो ह वा मासानामर्धसामानां दिवसानां मुहूर्तानां नामधेयानि वेद नैतेष्वार्तिमृच्छति य एवं वेद॥

अर्थात् जो मासों, पक्षों, दिवसों, तिथियों और मुहूर्तादिकों के नामों को जानेगा उसे किसी भी काल में अशुभत्व की आशङ्का नहीं होगी किन्तु जानेगा तब। इनके नाम ये हैं– मधु, माधव, इष, ऊर्ज, शुक्र, शुचि, नभ, नभस्य, तपः तपस्य, सह, सहस्य।

वेद में सब नक्षत्र शुभ हैं और उन्हें देवगृह तथा तारक आदि कहा है। एक भी नक्षत्र का नाम अशुभ नहीं हैं जिन्होंने ये नाम रखे उनको सर्वत्र शुभ ही दिखाई दे रहा था पर वर्तमान ज्योतिष सब नक्षत्रों को शुभ नहीं मानता। हरि का नक्षत्र श्रवण, गुरु का नक्षत्र पुष्य, अदिति का नक्षत्र पुनर्वसु, मरुत् का नक्षत्र स्वाति और पूषा का नक्षत्र रेवती भी कुछ ही कर्मों में गृहीत हैं। दक्षिणा लेकर अशुभों के झुण्ड में शुभ बड़े परिश्रम से ढूँढ़ना पड़ता है और ज्योतिष ग्रन्थकारों ने लिख दिया है कि सर्वथा निर्दोष मुहूर्त तो एक सहस्र वर्षों में भी नहीं मिलेगा। आप जितने कर्म कर रहे हैं, कम-से कम 10 दोष सबके मुहूर्तों में हैं। **वैदिक**

ज्योतिष का आधार नक्षत्र हैं और वर्तमान ज्योतिष का विदेशी राशि और वार है। यह होराशास्त्र कहा जाता है पर संस्कृत कोश में होरा शब्द कहीं नहीं है। इसका सम्बन्ध HOUR से है। आज का होरा शास्त्र बारह राशियों और सात वारों पर आधारित है। पर वेद ही नहीं, हमारे अन्य प्राचीन ग्रन्थों में भी इनका कहीं उल्लेख नहीं है। राशियों की मेष, वृष आदि आकृतियाँ आकाश में कहीं दिखाई नहीं देतीं और वारों का आकाश से तथा रवि आदि सात ग्रहों से कोई नाता नहीं है। न रविवार गरम होता है न सोमवार ठण्डा होता है न सिंह राशि वाले वीर और हिंसक होते हैं न कन्या राशि वाले निर्बल और भीरु होते हैं। होराशास्त्र में कल्पना का एकछत्र राज्य है पर वैदिक ज्योतिष की उक्तियाँ उन ऋषियों की हैं जो सदा आकाश का निरीक्षण किया करते थे और जिनके कालमानों का हर नाम आकाश से सम्बन्धित है। वेदों में 12 मासों का, अधिक मास का, मासों के 48 नामों का, वृत्त के 360 अंशों का, नक्षत्रीय प्रजापति का, नक्षत्रों का और तिथ्यादिकों के स्वरूप का सत्य एवं आलङ्कारिक विशद वर्णन है पर राशि और वारों का इसलिए नहीं है कि वे काल्पनिक हैं। हमारे पूर्वजों ने परकीय ज्ञान की कभी अवहेलना नहीं की पर दुर्भाग्य से इधर वह अज्ञान भी ले लिया। भारत में आने के बाद यह कल्पना के विशाल जाल में फँसकर अधिक विकृत हो गया है, इसमें कई सहस्र दोष और प्रश्न हैं। उनमें से कुछ ये हैं–

1. सारा यह विश्व कहता है कि संस्कृत वर्णमाला सर्वश्रेष्ठ और वैज्ञानिक है। उसमें स्वरों और व्यंजनों का क्रम बहुत सोच समझ कर रखा गया है पर हम आजकल जन्मनाम विदेशी होराशास्त्र के उस अबकड़ा चक्र से रखते हैं जिसके वर्णक्रम की कोई उपपत्ति नहीं है और जिसमें ऋ, ब, श, ष आदि हैं ही नहीं।

2. सात ग्रह बारह राशियों के स्वामी माने गये हैं। इसमें तथा अन्य सैकड़ों वर्णनों से यह बात सिद्ध हो जाती है कि प्राचीनकाल में सात ही ग्रह माने जाते थे, वराहमिहिर और कल्याण वर्मा आदि प्राचीन आचार्यों ने सात ही ग्रह माने हैं क्योंकि आकाश में सात के ही बिम्ब दिखाई देते हैं किन्तु बाद में सूर्य चन्द्र की दो निराकार कक्षाओं के दो निराकार सम्पात भी राहु केतु नामक दो ग्रह मान लिये गये। उनके भी लम्बे-लम्बे फल लिखे जाने लगे और फलादेश में उनका महत्त्व सूर्य चन्द्र से अधिक हो गया। शंका होती है कि जिन वराहमिहिरादि आचार्यों ने इन्हें ग्रह नहीं माना उनके फल सत्य हैं या आपके।

3. आकाश में सूर्यचन्द्र के अतिरिक्त अन्य ग्रह भी हैं। उनकी भी कक्षायें हैं और उनके भी पचासों निराकार सम्पात हैं। यदि राहु केतु का प्रभाव पड़ता है तो उनका भी अवश्य पड़ता होगा किन्तु आप उनका गणित नहीं करते तो फलादेश सत्य कैसे होंगे?

4. सौरमण्डल के सबसे बड़े और तेजस्वी ग्रह सूर्य का दशावर्ष सबसे कम केवल छः वर्ष है पर सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होने वाले और उससे बहुत छोटे चन्द्रमा की दशा के वर्ष उसके दो गुने से थोड़ा कम दस वर्ष हैं तो क्या चन्द्रमा का प्रभाव सूर्य से अधिक है?

5. भारत में परस्पर विरुद्ध अनेक प्रकार की दशाएँ प्रचलित हैं। एक से जो काल शुभ होता है वही दूसरी से अशुभ। **6.** वराहमिहिर आदि प्राचीन आचार्यों ने इनकी चर्चा नहीं की है। विंशोत्तरी दशा तो लिखी है पर वह नैसर्गिक है और हर मानव के लिए एक है।

कामवासना का उद्‌गम शुक्र दशा का आरम्भ है और वृद्धावस्था शनि की दशा है। इस प्रकार पूरा जीवन सात ग्रहों में बाँट दिया गया है। **7.** आज की दशाओं में ग्रहों के वर्षमान में और उनके क्रम आदि में भी मतभेद है क्योंकि वे अनुभूतियाँ नहीं बल्कि कल्पनाएँ हैं। **8.** आकाश में जिस राहु का कोई बिम्ब नहीं है उसके दशावर्ष ग्रहराज सूर्य से तीन गुने 18 वर्ष हैं। बुध के 17, शुक्र के 20 और शनि के 19 हैं जबकि ये सूर्य से अति छोटे हैं। **9.** आकाश के सबसे तेजस्वी ग्रह सूर्य और चन्द्रमा एक-एक राशियों के स्वामी हैं पर जिस नन्हें से बुध को अनेक पाश्चात्य ज्योतिषी प्रयास करने पर भी जीवन भर में कभी देख न सके वह तथा अन्य ग्रह दो-दो राशियों के स्वामी हैं और इसका कल्पना के अतिरिक्त कोई हेतु नहीं है। **10.** ये राशिस्वामी ग्रहों के जिस कक्षाक्रम के आधार पर निश्चित किये गये हैं उसे विज्ञान ने प्रत्यक्ष विरुद्ध और मिथ्या सिद्ध कर दिया है। अब यह निश्चित हो गया है कि ग्रह पृथ्वी की नहीं बल्कि सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं और पृथ्वी स्वयं सूर्य की प्रदक्षिणा करती है। पृथ्वी को अचला मानने पर पचासों प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते। ग्रहों के राशि-स्वामित्व का निर्णय जिस कक्षाक्रम द्वारा किया गया है उसमें पृथ्वी और चन्द्र सूर्य के पास हैं तथा बुध और शुक्र दूर हैं किन्तु यह सिद्धान्त प्रत्यक्ष विरुद्ध है।

11. हम जन्मपत्री में ग्रहों को अपनी राशि में स्थित देख कर प्रसन्न हो जाते हैं किन्तु यह मिथ्या धारणा है क्योंकि सब ग्रह सदा बारहों राशियों में घूमा करते हैं, कोई किसी का घर नहीं है। **12.** राहु केतु को ग्रह मान लेने पर उनको भी एक-एक राशियाँ दी गयीं। **13.** यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो का आविष्कार होने के बाद अन्य ग्रहों से छीन-छीन कर उन्हें भी राशियाँ दी जा रही हैं अर्थात् अब पुराना स्वक्षेत्र (स्वगृह) वाला नियम भग्न हो रहा है तो प्राचीन फलों और ग्रन्थों का क्या मूल्य रहा? **14.** क्रान्तिवृत्त का 12 विभाग करने में क्या कोई रहस्य है?

15. हम जन्मपत्री में ग्रहों को उनकी उच्च राशि में स्थित देखकर प्रसन्न हो जाते हैं और उस व्यक्ति को भाग्यशाली समझने लगते हैं पर ज्योतिष के भास्कर आदि आचार्यों ने लिखा है कि ग्रहकक्षा का जो भाग हमसे दूर है वह उच्च है और जो निकट है वह नीच है तो क्या ग्रह दूर जाने पर प्रभावशाली और निकट आने पर प्रभावविहीन हो जाता है? वस्तुतः हमारी यह उच्चनीच की कल्पना भी निराधार है। **16.** हमने ग्रहों के उच्च नीच को युग-युग के लिए स्थायी मान लिया है पर प्राचीन और नूतन दोनों ज्योतिषियों ने सिद्ध कर दिया है कि ये सब चल हैं।

17. ज्योतिषी किसी ग्रह को मित्रक्षेत्र में स्थिति देखकर प्रसन्न और शत्रुक्षेत्र में देखकर उदासीन हो जाता है किन्तु मित्र, सम, शत्रु का सिद्धान्त जिस आधार पर बना है उसकी कोई उपपत्ति नहीं है वह भी कल्पना पर ही आधारित है। वहाँ एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं है (देखिए बृहत्संहिता की भटोत्पल टीका)।

18. इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे नियम हैं जिनसे वे अधिमित्र और अधिशत्रु भी हो जाते हैं। उनमें भी कल्पना का ही राज्य है। इससे फलादेश की कठिनाई और बढ़ जाती है। पिता-पुत्र सूर्य-शनि और चन्द्र-बुध में शत्रुत्व क्यों है, बृहस्पति का पुत्र बुध उसका शत्रु क्यों है, सूर्यमंगल में मित्रता क्यों है, इन प्रश्नों का एक भी समाधानकारक उत्तर नहीं है। **19.** जन्मपत्री में ग्रहों की दृष्टि का बड़ा महत्व है पर उसके सिद्धान्तों में मतभेद है और सब में इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है

कि 3, 4, 5, 7, 9, 10 में दृष्टि पड़ती है तो 6 में क्यों नहीं? ऐसे अनेक प्रश्न हैं।

20. मुख्य प्रश्न यह है कि जातकशास्त्र का मूल लग्न है पर उसके परस्पर विरोधी अनेक मत हैं। जैमिनि, पराशर आदि आचार्य सब लग्नों का मान समान (दो घण्टा) मानते हैं और भावसाधन में केवल 15 अंश जोड़ते हैं किन्तु आज के लग्नासाधन में सब राशियों के उदयमान भिन्न-भिन्न हैं। भावों का साधन प्रकार दूसरा है और अयनांशों के अनुसार राशियों के उदयमान बदलते रहते हैं। आचार्य वराहमिहिर का मान न दो घण्टा है न विषुवत् रेखावाला है। वह सारी धरती के लिए एक है। उस पर अयनांश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और उसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि बच्चा जिस घर में पैदा हुआ वहाँ कितनी स्त्रियाँ थीं, दीपक पलंग आदि की स्थिति क्या थी, द्वार किस दिशा में था, इन सब के आधार पर लग्न को बदलने का आदेश है, मुख्य जन्मकाल का कोई महत्त्व नहीं है।

21. जन्मकाल किसे कहें, यह भी एक प्रश्न है। कभी-कभी शिशु के एक अङ्ग के दर्शन के बाद पूरा बाहर आने में छः घण्टे से अधिक समय लग जाता है। **22.** हम राशियों के आरम्भ स्थान को स्थिर मानते हैं पर वह निश्चित रूप से चल है। प्राचीन काल में मृगशीर्ष प्रथम नक्षत्र था, वेदों, में कृत्तिका की अधिक चर्चा है, वहाँ से अश्विनी में आया और अब पूर्वभाद्रपदा में जाने की तैयारी में है। हमारे पूर्वज इसमें सदा संशोधन किया करते थे पर आज हम रूढ़िवादी बनकर 22 दिसम्बर को होने वाली मकर संक्रान्ति 24 दिनों बाद 14 जनवरी को मना रहे हैं अतः निश्चित है कि यह सत्य की उपलब्धि नहीं है। **23.** जिसका आरम्भ स्थान ही अशुद्ध है उसका फलादेश सत्य कैसे होगा? **24.** हमारे प्राचीन ग्रन्थों के निर्माण काल में यह 24 दिनों का अन्तर अदृश्य था, शून्य था तो उस स्थिति के आधार पर बने ग्रन्थ आज कैसे सत्य होंगे? **25.** मुहूर्त भी इसी से बताये जाते हैं तो वे सत्य कैसे होंगे?

खेद है ज्योतिष का हर विद्वान् जानता है कि भारत के बाहर सर्वत्र सायन गणना प्रचलित है क्योंकि वही प्रत्यक्ष और प्राकृतिक है। हमें भी उसी को ग्रहण करना चाहिए। हम लग्न निकालते समय पहले सूर्य को सायन करते हैं क्योंकि दूसरा उपाय नहीं है फिर भी विद्वत्समाज रूढ़ि के सामने नतमस्तक हो गया है। महामहोपाध्याय श्री बापूदेव जी शास्त्री ने दुखी होकर लिखा है कि यद्यपि सायन गणना ही ठीक है तथापि देश में सर्वत्र निरयण का प्रचार होने से मैं सामान्य जनता की सन्तुष्टि के लिए निरयण पंचांग बना रहा हूँ।

भवति यद्यपि सायनगणनैव मुख्या तथापि भारते सर्वत्र निरयणप्रचारात्। सामान्यजनप्रमोदायेदं तिथिपत्रं निरयणगणनयैव व्यरचयम् ॥

शास्त्रों के पंचांग का सारा गणित प्रत्यक्ष शास्त्रानुसार होता है। दक्षिण में चित्रा और रेवती पक्ष का कटुविवाद चल रहा है। दोनों पक्षों के महापण्डित जानते हैं कि आरम्भस्थान चल है सायनगणना ही समुचित है पर वे शास्त्रार्थ कर रहे हैं।

शंकर बालकृष्ण दीक्षित का सायन पंचांग नहीं चला। हाँ, यह सत्य है कि हमारे पूर्वजों ने पंचवर्षीय शाश्वत पंचांग छोड़ा, सुपर्णचिति छोड़ी मृगशीर्ष से अश्विनी पर आ गये, वसिष्ठ सिद्धान्त को दूरभ्रष्ट कहा, सूर्य सिद्धान्त में बीज संस्कार दिया और उसे भी छोड़ नये ग्रन्थ बनाये। आज वे होते तो सायन पंचांग ही चलता। आज भारत ही एक ऐसा देश है जिसमें परस्पर विरोधी अनेक पंचांग चलते हैं।

● **(क्रमशः)**

उपासना क्यों और कैसे?

(परमेश्वर की भक्ति उपासना से असीम सुखों की प्राप्ति)

– प्रो. चन्द्र प्रकाश आर्य

जब से यह सृष्टि बनी है मनुष्य ईश्वर की भक्ति, पूजा, वन्दना करता आया है। प्रत्येक देश, धर्म तथा सम्प्रदाय में ईश्वर तथा देवी-देवताओं का उल्लेख मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति के मन में ईश्वर या भगवान् की अपने इष्टदेव की कोई न कोई कल्पना होती है। धरती पर रहने वाले सभी लोग किसी न किसी देव या ईश्वर की पूजा करते हैं। भारत में परम्परागत देवताओं की संख्या तैंतीस करोड़ तक पहुँच गई परन्तु निरुक्त के अनुसार देवता एक है जो कि दान करता है, प्रकाश देता है, अथवा चमकता है अथवा आकाश में रहता है जैसे सूर्य चन्द्र आदि।

देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युःस्थानो भवतीति।

– निरुक्त 7/15

इसलिए वेद में अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, वसु, मरुत्, आदित्य आदि को देवता कहा है।

'अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवता ऽऽ दित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवता इन्द्रो देवता वरुणो देवता' (यजु. 14/20)

वेद के इस मंत्र के अनुसार तैंतीस देवता हैं। इन तैंतीस देवताओं को और जिसके ये अधीन हैं उनको ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं-

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे।
तान्वै त्रयस्त्रिंशद् देवानेके ब्रह्मविदो विदुः॥

– अथर्व. 10/23/4/27

परन्तु ये सब देवता पूजा या भक्ति के योग्य नहीं हैं किन्तु ये सब व्यवहारमात्र के लिए देव हैं जैसे लोक में भी हम श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न व्यक्ति को देवता कह देते हैं। सब मनुष्यों के लिए उपासना/भक्ति के योग्य देव एक ब्रह्म ही है। अन्य वस्तुओं में अन्य की प्रतिष्ठा या भावना करके उपासना करना उचित नहीं। जैसे माता में पत्नी की भावना, मिट्टी में चीनी की भावना गलत है, उसी प्रकार पत्थर में ईश्वर की भावना गलत है। शतपथ ब्राह्मण स्पष्ट कहता है कि परमात्मा की ही उपासना करनी चाहिए। जो परमेश्वर को छोड़ अन्य पदार्थ में ईश्वर बुद्धि करके उपासना करता है, वह सदा दुःखी होकर रोता है और जो ईश्वर की उपासना करता है वह सदा आनन्द में रहता है। जो अन्य देवता में ईश्वर की भावना करके उपासना करता है, वह कुछ नहीं जानता। वह विद्वानों में पशु के समान है–

'आत्मेत्येवोपासीत। स यो अन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात् प्रियं रोत्स्यतीतीश्वरो ह तथैव स्यादात्मानमेव प्रियमुपासीत। यो अन्यां देवतामुपासीत न स वेद यथा पशुरेवं स देवानाम्।' (श. ब्रा. 14/4, ब्रा. 2 कं.18,19, 22)

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में महर्षि दयानन्द ने देवता विषय पर वेदविषय के अन्तर्गत विस्तार से प्रकाश डाला है। वह देव, परमदेव कौन है? इसका उत्तर देते हुए शतपथ ब्राह्मण कहता है कि वह एक देव ब्रह्म ही है–

कतमो देव एक इति? स ब्रह्म इत्याचक्षते।

वह देव/परमात्मा/ब्रह्म एक ही है। वह दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवां या छठा नहीं है। वह सातवां, आठवां नौवां या दसवां भी नहीं है। वह एक ही है। वह अकेला ही इस जगत् को धारण कर रहा है। सारे देवता उसी में एकवृत हैं, उसी में समाये हुए हैं। वह सबको धारण कर रहा है। अथर्ववेद का मन्त्र है–

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते,
न पंचमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते।
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते,
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक
एव सर्वेऽस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति।

(अथर्व.कां 13/सू.4/मं.16-18, 20-21)

उस ब्रह्म के बहुत सारे नाम हैं। विद्वान् लोग उसे इन्द्र, मित्र, वरुण आदि भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।। (ऋ. 1/164/46)

उपनिषद् कहती है कि वह ब्रह्मा है, वही विष्णु है, रुद्र, शिव, इन्द्र एवं कालाग्नि भी वही है– **स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्स शिवस्सोऽक्षरस्सः परमः विराट्। स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमाः।।**

(कैवल्योपनिषत्- 7)

मनुस्मृति में कहा है कि कुछ लोग उसे अग्नि कहते हैं, अन्य इसे प्रजापति कहते हैं। इसे इन्द्र, प्राण और ब्रह्मा भी कहा गया है– **एतमग्निं वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम्। इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्।।** (मनु. 12/123)

अतः यह सुनिश्चित है कि वह परमदेव, परमात्मा, ब्रह्म एक ही है परन्तु उसका स्वरूप कैसा है? उपनिषदों में भी यह प्रश्न उठाया गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् कहती है कि वह ब्रह्म कैसा है?– **किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाताः।** (श्वेता 1/1)

गीता में भी यह प्रश्न पूछा गया है कि वह ब्रह्म कैसा है? और अध्यात्म क्या है? **'किं तद् ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम?** (गीता अ. 8/1)

मध्यकाल में भी ब्रह्म के बारे में विभिन्न मत प्रतिपादित किए गए। शंकराचार्य ने ब्रह्म का स्वरूप अद्वैत बताया तो रामानुजाचार्य ने इसे विशिष्टाद्वैत बताया। माध्वाचार्य ने ब्रह्म का स्वरूप द्वैतवादी बताया। निम्बार्काचार्य ने ब्रह्म की द्वैताद्वैतवादी व्याख्या की तो वल्लभाचार्य ने ब्रह्म को शुद्धाद्वैत बताया। ब्रह्म के स्वरूप के बारे में इन आचार्यों के अलावा भी बहुत कुछ कहा गया। भक्ति आन्दोलन तक आते-2 ब्रह्म सगुण और निर्गुण दो रूपों में माना जाने लगा। ब्रह्म के स्वरूप में विचार अब भी जारी है और आगे भी इसके स्वरूप पर चर्चा जारी रहेगी। किन्तु वेद ब्रह्म के

स्वरूप के बारे में स्पष्ट है। यजुर्वेद कहता है–

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ (यजु. 13/4)

आदि वेद के मंत्रों में इस बात का उत्तर मिल जाता है कि ब्रह्म का स्वरूप कैसा है? और किस प्रकार के देव की हम भक्ति करें? वेद में ही अन्यत्र कहा है कि जिसकी महिमा को ये हिमयुक्त पर्वत कहते हैं, जिसकी महिमा को नदियों सहित ये समुद्र कहते हैं तथा ये प्रकृष्ट दिशायें जिसकी बाहू के समान हैं उस सुखस्वरूप परमात्मा की हम विशेष भक्ति करें–

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः। यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यजु. 25/12)

श्वेताश्वतर उपनिषद् कहती है कि वह देव/परमात्मा एक है। वह सब भूतों में समाया हुआ है, वह सर्वव्यापक, सर्वभूतान्तरात्मा, सबका स्वामी है। वह केवल एक है, निर्गुण है– **एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। सर्वाध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।** (श्वेता. 6/11)

उस परमदेव परमेश्वर की भक्ति करने से मिलता क्या है? इस बारे में उपनिषद् कहती है कि उस परमदेव परमेश्वर को जानकर मनुष्य सब प्रकार के पाशों/सांसारिक बन्धनों से, क्लेशों, कष्टों से मुक्त हो जाता है–

विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।

(श्वे. उप. 5/13)

श्वेताश्वतर उपनिषद् फिर कहती है कि जो इसको जान लेते हैं, वे उसको प्राप्त करके अमृतस्वरूप अथवा अमर हो जाते हैं–

य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति।

(श्वेता. 4/17)

योगदर्शन में कहा है कि ईश्वर की भक्ति करने से चेतन स्वरूप परमात्मा के सामीप्य का लाभ होता है अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति होती है तथा शारीरिक एवं मानसिक विघ्न व्याधियों का विनाश होता है। संसार में रहते हुए व्यक्ति के चित्त में/मन में जो बार-बार विक्षेप/आक्रोश/विघ्न पैदा होता है, उसे ही अन्तराय कहते हैं। ईश्वर भक्ति से उनका नाश हो जाता है–

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च (यो.द. 1/29) अन्तराय क्या है? योगसूत्र (1/30) में इनका विवरण देते हुए कहा है– **व्याधिस्त्यानसंशय प्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्ते अन्तरायाः।**(यो.1/30)

अर्थात् व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व ये नौ चित्त के विक्षेप या अन्तराय हैं। इनकी विस्तृत व्याख्या योग दर्शन के व्यासभाष्य में दी गई है। फिर भी इनमें व्याधि, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति आदि कुछ तो स्पष्ट हैं। अन्य अन्तराय भी चित्त की विभिन्न स्थितियों से सम्बद्ध हैं जो योग साधना के मार्ग में बाधक बनकर उपस्थित होते हैं। इन अन्तरायों के साथ दुःख दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व शरीर में कम्पन,

श्वास एवं प्रश्वास सम्बन्धी अन्तराय भी विक्षेपों के साथ कभी-2 प्रकट हो जाते हैं–

दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासविक्षेपसहभुवः।

(योग. 1/31)

ईश्वर की भक्ति से, परमात्मा की उपासना से इन सब प्रकार के अन्तरायों/चित्तविक्षेपों/शारीरिक, मानसिक विक्षेपों का नाश हो जाता है। यह कोई सामान्य उपलब्धि नहीं है। योग साधक या भक्ति मार्ग के उपासक ही इसको जान सकते हैं। सांसारिक जनों को इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए महती एवं दीर्घ साधना की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए ईश्वर की भक्ति बताई गई है। यही नहीं परमेश्वर की भक्ति से मनुष्य को एक और बड़ा लाभ प्राप्त होता है– और वह है दीर्घायु की प्राप्ति। लम्बी आयु कौन नहीं चाहता? वेद मंत्रों में हम प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं- **जीवेम शरदः शतम्। पश्येम शरदः शतम्। शृणुयाम शरदः शतम्, प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।।** (यजु. 36/24)

इस दीर्घायु के साथ-2 ईश्वर की भक्ति से मनुष्य को प्रज्ञा, यश और ब्रह्म तेज की प्राप्ति होती है। मनु कहते हैं– **ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुयुः। प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च।।** (मनु. 4/94)

इस बारे में 'सत्यार्थप्रकाश' के सातवें समुल्लास में महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि- '**स्तुति** से ईश्वर में प्रीति उसके गुणकर्म- स्वभाव से अपने गुणकर्म, स्वभाव को सुधारना, **प्रार्थना** से निरभिमानिता, उत्साह और सहाय का मिलना, **उपासना** से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।' जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वर के गुणकर्म स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुणकर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं। इसलिए परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना अवश्य करनी चाहिए। इससे आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरावेगा और सबको सहन कर सकेगा क्या यह छोटी बात है? ईश्वर भक्ति से संसार के सभी सुखों की– धर्मार्थकाममोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। महर्षि दयानन्द कहते हैं–

'हे ईश्वर! दयानिधे। भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः।' ईश्वर की भक्ति सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। ईश्वर की भक्ति से जहाँ व्यक्ति मानव का कल्याण होता है वहाँ समष्टि, समाज तथा विश्व का भी कल्याण होता है संसार के सन्तों, महात्माओं का जीवन इस बात का साक्षी है।

ईश्वर से बड़ा संसार में अन्य कोई नहीं है। संसार में हम बड़े-बड़े लोगों के पास जाते हैं, ताकि हमारे काम सिद्ध हो सकें किन्तु वे हमारे समस्त कार्य पूरे नहीं कर सकते फिर उनका द्वार हर समय हमारे लिए खुला नहीं रहता। वे हमें दुत्कारते भी हैं, फटकारते भी हैं। वे हर समय हम पर प्रसन्न नहीं हो सकते। उनके द्वार पर जाने पर भी कहते हैं कि हमारे पास समय नहीं है और कभी उनके पहरेदार कहते हैं कि प्रभु/महाराज अभी एकान्त में

विश्राम कर रहे हैं। यदि हम बैठने के लिए कहते हैं तो उनके द्वारपाल या प्रहरी कहते हैं कि यहाँ से उठकर बाहर चले जाओ, देखेंगे तो स्वामी कुपित होंगे– ऐसे वचन जहाँ सुनने को मिलते हैं, मनुष्य को ऐसे लोगों के द्वार को त्यागकर परमात्मा की शरण में जाना चाहिए। भर्तृहरि ने यही लिखा है–

नायन्ते समयो रहस्यमधुना निद्राति नाथो यदि,
स्थित्वा द्रक्ष्यति कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः।
चेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्य विश्वेशितुः।
निर्दौवारिक निर्दयोक्त्यपरुषं निःसीमशर्मप्रदम्॥

(वैराग्य श. 87)

अतः हमें परमदेव परमात्मा की ही शरण में जाना चाहिए। फिर परमात्मा तो सबका बन्धु है, सखा है, माता है, पिता है। वह हमारा सब कुछ है। संस्कृत का यह श्लोक इस बारे में कितना प्रसिद्ध है–

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव!देव!।।

फिर उसकी शरण में जाने, उसकी भक्ति करने में हमें संकोच क्यों? वह माता-पिता की तरह हमें अच्छे मार्ग पर ले जाने वाला है। ईश्वर की भक्ति सबसे बड़ा बल एवं पुरुषार्थ है। ईश्वर की भक्ति से जहाँ व्यक्ति का सब प्रकार से कल्याण होता है, वहाँ संसार का कल्याण भी निश्चित है। उसकी भक्ति से, अन्न, धन-धान्य, प्रजा, पशु, ब्रह्मवर्चस् आदि सब कुछ प्राप्त हो सकता है। उसको प्राप्त करके मनुष्य महान् हो जाता है। तैत्तिरीयोपनिषद् कहती है– **'आनन्दो ब्रह्म व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति... य एवं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति, प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या।**

(तै. उ./भुगुवल्ली/अनुवाक- 6)

संसार के सभी धर्मों एवं मतों में ईश्वर की भक्ति का वर्णन मिलता है। आज भी लोग उसकी खोज में भटक रहे हैं। लोग अपनी-अपनी कल्पना के अनुसार विभिन्न रूपों में उसकी पूजा करते हैं। शैव उसे शिव कहते हैं, वेदान्ती उसे ब्रह्म कहते हैं, नैयायिक उसे कर्ता कहते हैं, बौद्ध लोग उसे बुद्ध कहते हैं, जैनी उसे अर्हत कहते हैं, मीमांसक उसे कर्म की संज्ञा देते हैं। भिन्न-भिन्न भाषाओं में उसे भिन्न-भिन्न नामों से कहा गया है। भिन्न-भिन्न धर्मों एवं मतों में उसे अलग-अलग नामों से पुकारा गया है। ऐसा वह तीनों लोकों का स्वामी परमेश्वर हरि, परमात्मा, ब्रह्म हमें मनोवांछित फल प्रदान करे। उदयनाचार्य के शब्दों में–

यं शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो,
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः,
सोऽस्माकं विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥

●

आर्यनिवास, अर्बन एस्टेट, करनाल

ब्राह्मण! सावधान

गताङ्क से आगे–

– डा. सम्पूर्णानन्द

जनता का अन्धविश्वास–

जब तक वेदों का चलन था तब तक कड़ाई थी, आधार वेद था, उसका एक-एक मन्त्र गिना हुआ था, एक मंत्र के अर्थ का सामञ्जस्य दूसरे मंत्रों से करना पड़ता था, मीमांसा के विशेष नियम थे। अब यह सब बंधन ढीले हो गये। किसी देव-देवी, ऋषि-मुनि के नाम से कोई पुस्तक गढ़ दी जाय तो कोई पकड़ नहीं रह जाती। अपने अपने शास्त्र सभी प्रामाणिक हैं क्योंकि अपने उपासकों की दृष्टि से कोई देव-देवी किसी दूसरे से छोटा नहीं है। शिक्षा जितनी ही नरम होगी, उसमें सत्य, ब्रह्मचर्य, तप, त्याग का जितना ही कम काम होगा, उतनी ही उसकी मान्यता बढ़ेगी, क्योंकि यह विश्वास दृढ़ हो गया है कि कलिकाल में लोग कठिन उपासना नहीं कर सकते।

बस दो वस्तुएं चाहियें– संस्कृत-भाषा और अनुष्टुप् छन्द। जैसा कि मैं पहिले कह आया हूँ– लघुकौमुदी और अमर कोष से काम चलाने भर को संस्कृत आ जाती है। अनुष्टुप् के बराबर सीधा छन्द नहीं होता। आठ-आठ अक्षर के चार पद, मात्रा का विचार करना नहीं होता। लोगों पर श्लोक की गरिमा पहिले से बैठी हुई है। बस इस आड़ में चाहे जो कह जाइये, उसके पक्ष में चाहे जैसा तर्क दीजिये या कुछ न दीजिये। यदि आप कह दें कि मेरा कहा वेद स्मृति पुराणसम्मत है तो आपको अपनी पुष्टि में कोई प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। यह श्लोक सबने ही सुना होगा जिसमें कहा गया है कि पञ्चकन्या अर्थात् अहल्या, मन्दोदरी, तारा, द्रौपदी और कुन्ती के नित्यस्मरण से सब पातकों का नाश होता है किसी ने दिल्लगी में ही इसकी रचना की होगी पर अब यह धर्म का अङ्ग हो गया। यह कोई नहीं पूछता कि इसका आधार क्या है। यह प्रश्न नहीं उठता कि यदि पाँच स्त्रियों के नित्यस्मरण से ही सब पापों का शमन होता है तो सती, सावित्री, सीता, लोपामुद्रा और अरुन्धती का नाम क्यों न लिया जाये?

अनुष्टुप् का जादू ऐसा छाया है कि उसको तोड़ना कठिन हो जाता है। श्लोक ऐसा कहता है, फिर क्या चाहिये? प्रत्येक श्लोक शास्त्र है और शास्त्र अनुल्लंघनीय है। मेरे एक विद्वान् मित्र अपने लड़कपन के दो खिलवाड़ बता रहे थे। उनके यहाँ कोई पण्डित जी आये थे, सायंकाल के समय लघुशंका करने जा रहे थे। इन्होंने तड़ से यह श्लोकार्ध बनाकर पढ़ दिया।

लघुशङ्का न कर्त्तव्या, सायं प्रातर्जनाधिप।

अर्थात् हे राजन्! प्रातः काल और सायंकाल लघुशंका नहीं करनी चाहिये। बस सुनते ही पण्डित जी रुक गये। ऐसे ही, दूसरे पण्डित जी कहीं नंगे पाँव जाने वाले थे। इन्होंने उनसे कहा आप कहाँ जाने वाले हैं, क्या आप इस वाक्य को नहीं जानते?

पादत्राणविहीनानाम्, का गतिः स्याज्जनार्दन।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम॥

अर्थात् हे जनार्दन! जो लोग बिना जूते के रहते हैं उनकी क्या गति होती है? ऐसे लोगों का नरक में वास निश्चित रूप से होता है मैंने ऐसा सुना है ।

ये पण्डित जी भी द्विविधा में पड़ गये। ऐसा तमाशा जो चाहे देख सकता है। ऐसी श्रद्धा बुद्धि को भ्रष्ट करने वाली है। '**बुद्धिर्यस्य बलं तस्य**' यह ध्रुव सत्य है। तथाकथित धर्मशास्त्र से एक उदाहरण देता हूँ। हिन्दू धर्म के महापीठ हिन्दू विश्वविद्यालय से जो विश्वपञ्चाङ्ग निकलता है उसमें काक-मैथुन देख लेने या कौए से छू जाने या आधी रात में कौए के बोल उठने या घर पर आ बैठने पर जो प्रायश्चित्त करना होता है उसका लम्बा विधान दिया है। अब दो ही बातें हैं– या तो कोई इन बातों पर विश्वास न करे, ऐसी दशा में इनको धर्मशास्त्र के भीतर रखना धर्मशास्त्र की हँसी कराना है और यदि विश्वास करते हैं ऐसी दशा में मनुष्य की बुद्धि पतित होती है और मनुष्य नाम का भी अपमान होता है। जहाँ धर्म की जगह ऐसी बेसिर पैर की बातें होने लगीं वहाँ संस्कृति और आत्मनिर्भरता की हत्या होना अवश्यम्भावी है और फिर जब प्रतिक्रिया होगी तो अविश्वास की आंधी इन असच्छास्त्रों के साथ-साथ वेदादि सच्छास्त्रों को भी उड़ा ले जायेगी।

द्विधा कर्त्तव्य :–

जो लोग सचमुच धर्म में अभिरुचि रखते हों उनका द्विधा कर्त्तव्य है– एक तो इस प्रकार की मध्य युगीन ऊटपटांग रचनाओं और उनके आधार पर खड़े कर्म और उपासना के आडम्बर का निर्दय विरोध और दूसरे प्राचीन वेदादि के पुनः पठन-पाठन और उनकी तर्कमूलक मीमांसा का समर्थन करना। ऐसा कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि मैं शैव, वैष्णव आदि सम्प्रदायों की उपासना शैलियों का विरोध कर रहा हूँ या फिर से अश्वमेध की प्रथा चलाना चाहता हूँ। मेरा तात्पर्य यह है कि जो धर्म और संस्कृति का मूल है उसको सामने लाना चाहिये, आज जो आदेशों और उपदेशों का जंगल उग गया है, उसको काट देना चाहिये। उपदेश और उपासना का एक निर्विवाद और सर्वमान्य स्रोत होना चाहिये और देशकाल के अनुकूल तर्क के सहारे कर्म की व्यवस्था होनी चाहिए। इस कर्त्तव्य का बोझ सब से अधिक उन लोगों पर है जो सच्छास्त्रों के संरक्षक हैं। इस समय ऐसा हो रहा है कि लोग बाहर पहरा दे रहे हैं और भीतर से निधि लुटती चली जा रही है।

धर्म के नाम पर लोगों में अकर्मण्यता, आलस्य, दम्भ का जो विष फैल रहा है उसे यदि तत्काल रोका न गया तो धर्म का नाम ही मिट जायेगा।

(3)

मैंने पहले संकेत किया है कि साधारण हिन्दू यह नहीं जानता कि उसके उपास्य कौन हैं और कितने हैं। विदेशी और विधर्मी इस पर हँसते हैं। किसी के हँसने से कोई वस्तु निन्दास्पद नहीं हो जाती परन्तु समझदार मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि अपने कर्मों की जाँच आप करता रहे और यदि कोई काम ठीक न जँचे तो चाहे लोग उसकी प्रशंसा करें तब भी त्याग दे। पूजा पाठ के सम्बन्ध में जो अन्धाधुन्ध अराजकता मची हुई है उसको न तो बुद्धि से आश्रय मिलता है न प्राचीन शास्त्र परम्परा से। हमारे धर्म का मूल जब वेद है तो फिर उसी में से सारी उपासना निकलनी चाहिये। इन्द्र, वायु, अग्नि आदि ये जड़ देव हैं जो कि परमेश्वर के अनुशासन में रहते हैं। अतः इनकी संख्या में वृद्धि होने का अर्थ यह हुआ कि वेद धर्म के विषय में प्रमाण नहीं है। पर यह तो कोई हिन्दू अपने मुँह से कह नहीं सकता, अतः कोई हिन्दू वेदोक्त संख्या में नये देवों को जोड़ नहीं सकता।

उपास्य देवों का बाहुल्य :–

इस बात को ध्यान में रखते हुए हमारे आजकल के उपास्यों की सूची देखिये। सबसे पहले गणेश जी आते हैं। इनके बिना किसी पूजा, किसी शुभ कृत्य का अनुष्ठान हो ही नहीं सकता। यह कहाँ से आये? वैदिक देव-सूची में इनका नाम नहीं है, यद्यपि 'सुर अनादि जिय जानि' कहकर तुलसीदास जी ने इनके पिता माता के विवाह में पहिले इनकी पूजा करवायी है। प्राचीन काल में विनायक नाम के एक प्रकार के विघ्नकारी सूक्ष्म देहधारी होते थे। जिनके उपशम के लिए उसी प्रकार के उपचार किये जाते थे जैसे आज प्रेत बाधा के लिए किये जाते हैं। मानव गृह्य सूत्र काल तक यही बात थी। आजकल भी जब किसी घर में कोई बहुत रुग्ण होता है या कोई ऐसा ही उपद्रव होता है तो विनायक शान्ति के लिए यज्ञ किया जाता है। विनायक चार थे। गणेश जी इनके गणधर नेता थे, आज भी 'नमामि विघ्नेश्वरपाद-पङ्कजम्' कहा जाता है, शुभ कृत्यों के आरम्भ में विनायकों की (विशेषतः उनके नेता की) शान्ति की जाती थी, ताकि वे लोग काम में विघ्न न डालें। होते-होते उनकी पदवृद्धि ऐसी हुई कि विघ्नकारी से कल्याणकारी मान लिये गये और हिन्दू समाज को एक नया उपास्य मिल गया। त्रेता के अन्त में रामचन्द्रजी ने लंका पर चढ़ाई की। इस युद्ध में हनुमान से बड़ी सहायता मिली। तत्कालीन आर्य ही नहीं उनके एतत्कालीन वंशज भी हनुमान जी के प्रति अपनी कृतज्ञता का प्रदर्शन करते, यह सर्वथा उचित था परन्तु इतने से ही काम न बना। सारा सतयुग और प्रायः सारा त्रेता

बीत जाने के बाद देव-सूची में एक नाम और बढ़ा हनुमान जी पुजने लगे। इसी प्रकार भैरव पुजते हैं, शीतला पुजती हैं, सर्प पुजते हैं। इनमें से किसी की पूजा पर आक्षेप करना सनातन धर्म के विरुद्ध विद्रोह करना माना जाता है।

तैंतीस कोटि से तैंतीस करोड़ मानने से यह अनर्थ हुआ है। इन सबके नाम कोई जानता तो है नहीं, कोई भी नया नाम जोड़ दिया जा सकता है। यह कौन कह सकता है कि तैंतीस करोड़ में यह नहीं है। अशिक्षितों में भी ऐसे लोग हैं जो तैंतीस कोटि का अर्थ गिनती से तैंतीस करोड़ नहीं वरन् 'बहुत से' करते हैं पर इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। 'बहुत से' कहना भी अनिश्चित संख्या है। यदि शीतला रोग की अधिष्ठात्री उपास्य है तो हैजा और प्लेग की पूजा न करनी चाहिये, यह कैसे सिद्ध हुआ? यदि हनुमान जी की पूजा हो सकती है तो हमारे गाँव के रहने वाले खदेरू बाबा की क्यों नहीं हो सकती, जो अपने जीवन काल में झाड़-फूंक से गाँव वालों का बड़ा उपकार करते थे। यह कैसे जाना जाय कि उस सूची में हसन-हुसैन या गाजी मियाँ का नाम नहीं है? और फिर आगा खाँ क्या बुरे हैं? ताजिया पर शर्बत चढ़ाने वाला या बीबी फातमा को पूजने वाला ऐसा कौन-सा बुरा काम करता है जो हिन्दू को न करना चाहिये? मैंने हिन्दू स्त्रियों को, जिनमें ब्राह्मणी और क्षत्राणी भी थीं। शुक्रवार के दिन बच्चों को गोद में लिये मसजिद के बाहर खड़ी देखा है ताकि नमाज पढ़कर निकलने वाले उन बच्चों पर फूंक छोड़ते जाएं। यही माताएँ उतनी ही श्रद्धा से मसान बाबा की फूंक भी लेती हैं, भैरवनाथ जी का भभूत (विभूति) भी लेती हैं। उनके लिए सब बराबर हैं। राम-रहीम को एक मानना अच्छा है, '**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**' का सिद्धान्त अक्षरशः सत्य है, पर यह सब जो कुछ होता है वेदान्त के आधार पर नहीं होता। वेदान्त का मूल ज्ञान है, इस धार्मिक अराजकता का मूल घोर अज्ञान, घनीभूत मोह है।

एक कहानी है कि एक हिन्दू और एक मुसलमान नाव पर जा रहे थे कि आंधी उठी और नाव डूबने लगी। हिन्दू ने घबराकर कालीजी को पुकारा। वह सहायता को आगे बढ़ी ही थीं कि उसने बाबा भैरवनाथ जी का नाम लिया। काली जी रुक गयीं और भैरवनाथ जी ने त्रिशूल संभाला। इतने में उसने बजरंगबली की दुहाई दी। मुसलमान यह तमाशा देख रहा था। उसने कहा 'भाई साहब, जब तक यह पञ्चायत पूरी होगी तब तक यह नाव डूब जाएगी। अब आप रुक जाइये।' यह कहकर उसने आल्लाह को याद किया। उन्होंने आकर नाव को किनारे लगाया। यह है तो कहानी, पर इसमें काम की बात है। हिन्दू अपने उपास्यों की पञ्चायत में मारा जाता है।

● **(क्रमशः)**

वर्त्तमान सामाजिक परिस्थितियों में ''सत्यार्थ प्रकाश'' की उपयोगिता

– प्रतिभा आर्या

[पिछले दिनों आर्य युवक परिषद् दिल्ली द्वारा अपनी स्थापना के स्वर्ण जयन्ती वर्ष पर आयोजित 'वर्त्तमान सामाजिक परिस्थितियों में सत्यार्थ प्रकाश की उपयोगिता' विषय पर आयोजित लेख प्रतियोगिता में अपने महाविद्यालय की कन्या प्रतिभा आर्या ने प्रथम स्थान प्राप्त किया यह गौरव का विषय है। इसी वर्ष एक बार में ही इसी कन्या ने नेट भी निकाल कर दोहरी उपलब्धि अर्जित की है। **– सम्पा०**]

भारतीय धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक तथा राजनैतिक **नवजागरण के पुरोधा स्वामी दयानन्द सरस्वती** की अद्वितीय साहित्यिक कृति **सत्यार्थ प्रकाश** जिसे विश्व के धार्मिक और साम्प्रदायिक विचार समूह का नवनीत तथा दार्शनिक एवं समस्त आध्यात्मिक चिन्तन का सार सर्वस्व कहा जा सकता है।

'**सत्यार्थ प्रकाश**' इस देदीप्यमान ग्रन्थ की रचना करके महर्षि के द्वारा मानव जाति का अवर्णनीय उपकार किया गया है। सत्यार्थ प्रकाश का मुख्य प्रयोजन महर्षि ने अपनी भूमिका में प्रस्तुत किया है, जो कि सत्यार्थ प्रकाश इस शब्द से ही द्योतित होता है, अर्थात् महर्षि के द्वारा इस ग्रन्थ को बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना ही था। जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्यार्थ का प्रकाश है। '**सत्यं न तत् यच्छलेनाभ्युपेतम्**' वह सत्य नहीं हो सकता जो छल से युक्त हो। यह सत्यार्थ प्रकाश जो सम्पूर्ण देश में एक साथ सभी क्षेत्रों में सुधारक ही नहीं अपितु क्रान्ति का दूत बनकर सबके सामने आया।

जब हम महर्षि के आगमन से पूर्व की स्थिति का आकलन करते हैं तो यही प्रतीत होता है ''**तम आसीत् तमसा गूढमग्रे**' (ऋ. 10/129/3) के अनुसार हमारा मध्यकालीन भारत वर्ष अन्धकारमयी रात्रि में अज्ञानता की काली चादर ओढ़े चिरनिद्रा में विलीन था। धर्म के नाम पर पाखण्ड एवं सम्प्रदायवाद, सत्य के नाम पर असत्य चहुँ ओर फैला हुआ था। जाति भेद के भयंकर रूप, दलित एवं शोषित वर्ग की शोचनीय स्थिति तथा नारी जाति पर हुए अत्याचारों से जनसमुदाय क्लान्त परिश्रान्त हो सर्वथा मृतप्राय हो चुका था। अनेक धार्मिक तथा सामाजिक कुरीतियाँ मुँह खोले सभी को आत्मसात् करने का प्रयास कर रही थीं। ऐसे समय में सत्य शंकर के अन्वेषक सत्यार्थ प्रतिपादक, सूर्यसम तेजस्वी महर्षि ने भारतीयों में फैले समस्त रोगों व कुरीतियों का निराकरण करने हेतु सत्यार्थ प्रकाश रूपी ग्रन्थ का प्रणयन कर उसे जनकल्याण के लिए प्रदान किया। बालविवाह, श्राद्धतर्पण, छूआ-छूत, भूत-प्रेत, झाड़-फूंक तथा भक्ष्याभक्ष्य, जातिवाद, क्षेत्रवाद, सम्प्रदायवाद, मूर्त्तिपूजा आदि अनेक अन्धविश्वासों का तर्क एवं प्रमाणों से

खण्डन करते हुए इनका वास्तविक सत्यार्थ उन्होंने इस ग्रन्थ में प्रकाशित किया।

सत्यार्थ प्रकाश रूपी ज्ञानकुण्ड के सम्पूर्ण अध्ययन से यह निचोड़ सामने आता है कि यह सार्वलौकिक, सार्वकालिक, सार्वभौम ग्रन्थ है। क्योंकि इसका मूल वेद है। जीवन की प्रत्येक समस्याओं के समाधान का नाम ही सत्यार्थ प्रकाश है। इसीलिए एक कवि ने कहा–

सभी समस्याओं का यदि
तुम समाधान पाना चाहो।
पढ़ो महर्षि दयानन्द का
अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश।।

वर्त्तमान सामाजिक परिस्थितियों में सत्यार्थ प्रकाश का प्रत्येक समुल्लास अत्यन्त उपयोगी है हम प्रथम समुल्लास को ही देखें जिसमें ईश्वर के 101 नामों की व्याख्या है ये सभी नाम उस परमपिता परमेश्वर के हैं जो समस्त जगत् के कण-कण में विद्यमान है जिसका मुख्य नाम महर्षि ने ओ३म् बताया एवं वह भिन्न-2 गुणों के कारण ही अनेक नामों से पुकारा जाता है, जैसा कि उन्होंने सप्रमाण उद्धृत किया–

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो
दिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा
वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

(ऋ. 1/164/46)

वर्त्तमान समाज में असंख्य देवी-देवता, नानामत-सम्प्रदाय प्रचलित हैं, साथ ही इनके विभिन्न तीर्थों, मन्दिरों, देवालयों में जाने-आने, चढ़ावा-चढ़ाने, व भगवान् के दर्शन करने के ढंग भी अजब निराले हैं। इन्हीं मन्दिरों में आये-दिन भगदड़, लूट-पाट, भ्रष्टाचार होता है। ऐसे घोर कलियुग के काल में जहाँ नित नये भगवान् हमारी स्वार्थ सिद्धियों के अनुरूप उत्पन्न हो रहे हैं, वहाँ वेद प्रतिपादित महर्षिकृत सत्यार्थ प्रकाश में ईश्वर के अनेक नाम जो कि उसके गुणों के कारण हैं हमें उस एक ओ३म् पद वाच्य सर्वव्यापक ईश्वर की ही उपासना करनी चाहिए बताया है। समाज में फैली समस्त विसंगतियों का निराकरण वस्तुतः इस सत्य सिद्धान्त से ही हो सकेगा।

महर्षि द्वितीय समुल्लास में लिखते हैं कि एक योग्य पुरुष के निर्माण में माता, पिता एवं आचार्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद।

इस ब्राह्मण वचन को उद्धृत करते हुये महर्षि ने मातृमान् शब्द की व्याख्या प्रस्तुत की कि– ''**प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान्।**'' अर्थात् जिसकी प्रशंसनीय धार्मिक विदुषी माता हो वही मातृमान् कहलाने का अधिकारी है राष्ट्र के निर्माण में सर्वप्रथम माता की ही भूमिका होती है क्योंकि ''**माता निर्माता भवति**।'' देश की बागडोर माता के हाथों में ही होती है उसे सम्मानित पूजित कर हम एक अच्छे राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं। महर्षि ने स्त्री शिक्षा के लिए तृतीय समुल्लास में भी जोर दिया है कि स्त्रियाँ वेद वेदाङ्गादि सद्ग्रन्थों को पढ़कर

पूर्ण विदुषी बनकर जनकल्याण का कार्य करें। विश्व के इतिहास में प्रथम बार अबला व पैरों की जूती कही जाने वाली नारी को **ब्रह्मा** इस महनीय पदवी से महर्षि ने विभूषित किया और सत्यार्थ प्रकाश में वेद का प्रमाण उद्धृत किया– **स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ**। (ऋ. 8/33/19) आज वर्त्तमान समय में नारियाँ सड़क से संसद तक, अवनि से अम्बर तक प्रगति कर रही हैं उसके पीछे महर्षि की ही उद्घोषणा सत्यापित हो रही है। इस प्रकार वर्त्तमान सामाजिक परिवेश में सत्यार्थ प्रकाश के इन गौरवमय विचारों की अत्यन्त उपयोगिता है।

सम्पूर्ण राष्ट्र की प्रगति उस राष्ट्र की शिक्षा पद्धति एवं वैचारिक क्रान्ति पर निर्भर करती है, मनुष्य जिस प्रकार चिन्तन मनन करेगा राष्ट्र का निर्माण भी उसी प्रकार होगा। और इन सब के लिए वर्त्तमान में शिक्षा की सर्वप्रथम आवश्यकता है। सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में महर्षि ने गुरुकुलीय शिक्षा एवं आर्ष शिक्षा को ही मुख्य माना है, उन्होंने आर्ष ग्रन्थों के पठन-पाठन का नियम निर्धारित किया और कहा– ''**आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना बहुमूल्य मोतियों को पाना।**'' इतर अनार्ष ग्रन्थों का निषेध किया। उन्होंने अल्प समय में सम्पूर्ण वेद वेदाङ्गों का अध्ययन कर भारतीय संस्कृति, संस्कार को जान कर आज के वर्त्तमान समाज को सत्यार्थ द्योतित कराया। सत्यार्थ प्रकाश पर आधारित शिक्षण व्यवस्था पर अमल करके ही हम पुनः आर्यावर्त्त देश को ऋषि-मुनियों का देश बना सकते हैं अतः प्रत्येक परिस्थिति में आज सत्यार्थ प्रकाश के विचारों की नितान्त आवश्यकता है।

महर्षि ने देश की राज्य व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने हेतु सत्यार्थ प्रकाश के षष्ठ समुल्लास में दण्ड एवं न्याय पर मनुस्मृति के श्लोकों को प्रमाण रूप में उद्धृत करते हुए बताया कि देश की न्याय व्यवस्था राजा में निहित होती है यदि वही अन्यायी, दुराचारी, आलसी होगा तो प्रजा भी उसी प्रकार होगी क्योंकि ''**यथा राजा तथा प्रजा**।'' जैसा कि उन्होंने उद्धृत किया है–

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः॥
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः॥

(मनु. 7/17, 18)

अर्थात् जो दण्ड है वही राजा है वही नेता, शासन कर्त्ता वर्णाश्रम धर्मों का प्रतिभू है। और दण्ड ही प्रजा का शासनकर्त्ता रक्षक है सोते हुए मनुष्यों में दण्ड ही जागता है इसीलिए दण्ड ही धर्म है। एक राजा दण्ड व्यवस्था का यथावत् पालन कर न्यायप्रिय होकर देश को सुव्यवस्थित चला सकता है। इस दृष्टि से भी सत्यार्थ प्रकाश की नितान्त आवश्यकता है। इसे अपनाकर ही वर्त्तमान भारतीय भ्रष्टतंत्र को लोकतन्त्र की समुचित इकाई में ढाला जा सकता है।

सत्यार्थ प्रकाश के माध्यम से ही महर्षि ने समाज के प्रत्येक पहलू छूआ-छूत, श्राद्ध-तर्पण, भूत-प्रेत इत्यादि सभी मिथ्याडम्बरों को इस ग्रन्थ में युक्तियुक्त प्रमाण एवं तर्क की कसौटी पर कसकर मिथ्या गपोड़ों

का समूलोन्मूलन कर जगत् में क्रान्ति की दुन्दुभि बजा दी। जिसकी आज भी उतनी ही नहीं उससे भी अधिक आवश्यकता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अष्टम समुल्लास में तन से हिन्दुस्तानी एवं मन से गुलाम लोगों में स्वदेश की क्रान्तिरूपी चिंगारी प्रदीप्त करने हेतु स्वदेश, देशभक्ति, संस्कृत एवं हिन्दी भाषा से प्यार करने हेतु स्वराज्य की घोषणा करते हुए कहा कि– **कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।** उन्होंने आर्यावर्त्त देश को पारसमणि कहा। महर्षि के ये एक-एक शब्द आज भी प्रत्येक देशवासी के मुखारविन्द पर अंकित हैं। जिसका प्रबल उदाहरण हम वर्त्तमान समाज में स्वदेशी विचारक, गुरुकुलीय शिक्षा के संवाहक **स्वामी रामदेव जी** एवं प्रसिद्ध समाज सेवी **अन्ना हजारे जी** को ही देख सकते हैं जिन्होंने प्रत्येक देशवासी के अन्दर स्वदेश प्रेम, स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग एवं काला धन, भ्रष्ट लोकतंत्र के विरुद्ध अग्नि जला दी। यह क्रान्ति की ज्वाला सत्यार्थ प्रकाश के ही कारण है। और जब-जब देश में भ्रष्टतंत्र स्थापित होगा देशप्रेम में कमी आयेगी तब-तब सत्यार्थ प्रकाश सबके मानस में क्रान्ति के बीज बोता रहेगा। इस प्रकार **सत्यार्थ प्रकाश एक कालजयी रचना है**। यह हर काल में क्रान्ति का दूत, शान्ति का दूत बनकर समाज को दिशा निर्देश देता रहा है और भविष्य में भी देता रहेगा। महर्षि ने आर्य जाति को ही श्रेष्ठ जाति कहा और सम्पूर्ण विश्व को वैदिक झण्डे के तले लाने का प्रयास किया और यह कार्य आज भी सत्यार्थ प्रकाश के माध्यम से ही हो रहा है। क्योंकि सत्यार्थ प्रकाश सूर्य के समान हर अन्धकारमयी रात्रि को अपने प्रकाश से प्रकाशित करता रहता है। भारत देश के स्वतन्त्रता संग्राम में मर मिटने वाले **लाला लाजपत राय** ने कहा था– **सत्यार्थ प्रकाश मेरे जीवन में प्रकाश देने वाले सूर्य के समान है।**

इस प्रकार महर्षि ने जहाँ प्रत्येक विषय पर सत्यार्थ प्रकाश में युक्तियुक्त प्रमाण प्रस्तुत किये हैं वहीं महर्षि ने दलितोद्धार, पुनर्विवाह, पारिवारिक संगठन, आश्रम व्यवस्था इत्यादि प्रत्येक सामाजिक पहलू पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं हम स्थालीपुलाक न्याय से सत्यार्थ प्रकाश पर एक दृष्टि डालें तो यह तथ्य सामने आता है कि सचमुच **सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि ने गागर में सागर भर दिया है**। यह सत्य है जब भी समाज दूषित, विकृत, दिग्भ्रमित होगा तब-तब सत्यार्थ प्रकाश दिव्य ओषधि का काम करता रहेगा। इसकी उपयोगिता हर युग में यथावत् बनी रहेगी। **सत्यार्थ प्रकाश भारत को ही नहीं सम्पूर्ण विश्व को प्रत्येक युग में प्रेरणा देता रहेगा।** मैं अपनी लेखनी को कवि की निम्न पंक्तियों से विराम देती हूँ–

युगों से सुप्त थी धरती, अन्धेरा घोर छाया था।
निरख कर देश की हालत, ऋषि का मन भी रोया था॥
उठाया सत्य का झण्डा, अन्धेरा डगमगाया था।
अमर सत्यार्थ ज्योति से, जगत् यह जगमगाया था॥

● **पाणिनि कन्या महाविद्यालय**,
महमूरगंज, वाराणसी- 10

डा. जस्ट की आहार चिकित्सा

– गणपति सिंह

डा. जस्ट जर्मनी के चोटी के एलोपैथ डाक्टर थे। वे कब्ज के जन्मजात रोगी थे। चालीस वर्ष तक शरीर में रोगों से लड़ने और कुछ भी हजम कर लेने की प्राकृतिक अद्‌भुत क्षमता तथा शक्ति होती है। इसके उपरान्त पाचन क्रिया व शक्ति क्षीण होने लगती है। मनुष्य जल्दी-जल्दी रोगी होने लगता है। दवाईयाँ प्रारम्भ में तो चमत्कार दिखाती हैं मगर धीरे-धीरे दवाईयाँ लाभ के स्थान पर अधिक हानि पहुँचाने लगती हैं। मनुष्य में प्राकृतिक शक्ति का लोप होते जाना इसका मुख्य कारण होता है। डा. जस्ट ने स्वयं भी और अन्य अनुभवी डाक्टरों से भी इलाज कराया मगर उनका रोग बढ़ता ही गया। उन्हें भूख नहीं लगती थी। शौच ठीक नहीं होता था, नींद नहीं आती थी। काम करने को मन नहीं करता था। जीवन में निराशा का प्रकोप दिनोंदिन बढ़ता जा रहा था। कभी-कभी आत्महत्या तक नौबत आने लगती थी। डा. जस्ट में जीवनी शक्ति का ह्रास बड़ी तेजी से हो रहा था।

एक दिन डा. जस्ट ने निराश होकर अपने क्लीनिक को ताला लगा दिया और घर से निकल पड़े। उन की कोई मंजिल नहीं थी, कोई कार्यक्रम नहीं था। केवल वे अपने कब्ज के रोग से छुटकारा पाना चाहते थे यदि छुटकारा नहीं मिलता है तो जीवन से ही छुटकारा मिल जाये तो अच्छा है बस इसी विचार से वे सैर के बहाने घर छोड़कर चल पड़े। जिधर पैर चलते वे चलते गये वे इतना चले कि उन्हें बहुत दिन के पश्चात् भूख अनुभव हुई। भूख को शान्त करने के लिये जंगल में क्या खायें वे यही सोचते चले जा रहे थे कि जंगल में एक अंजीर का वृक्ष पके हुए अंजीरों से लदा पड़ा था, बस उसी वृक्ष के नीचे डेरा डाल दिया। क्षुधा को शान्त करने के लिये वहीं डट कर जी भर कर अंजीर खाये। क्षुधा शान्त हुई और थकान के कारण नींद आ गई और गहरी नींद, बिना बिस्तर के ही धरती माता की गोद में सो गए।

डा. जस्ट बड़ी गहरी नींद सोये, आँखे खुलीं और उन्हें शौच की हाजत हुई। बड़ा खुल कर बदबूदार पुराना सड़ा मल आया जिससे उन का शरीर हलका हुआ और पुनः तीव्र भूख लगी। उन्होंने पुनः अंजीर के फल पेट भर कर खाये और नींद का जोर हुआ वे उसी वृक्ष के साये में सो गए खूब सोये, आँखे खुलीं, शौच की हाजत हुई। पहले की भाँति खुलकर बदबूदार गला सड़ा सूखा दस्त आया। डा. जस्ट को बहुत प्रसन्नता हुई वे शरीर को फुर्तीला और स्वस्थ अनुभव करने लगे भूख जोर से लगने लगी फिर वही अंजीर खाये और सो गए। नींद खुलती, शौच जाते, प्यास लगती झरने का पानी पीते, भूख लगी, अंजीर खाते और सो जाते, यही क्रम कई दिन रात चलता रहा और धीरे-धीरे डा. जस्ट अपने मन और शरीर को युवा अनुभव करने लगे। उनके चेहरे का तेज बढ़ने लगा, झुर्रियाँ लापता हो गईं फुर्ती और नवशक्ति का संचार

होने लगा, उत्साह उमंगें लेने लगा तब उन्होंने अंजीर के वृक्ष तथा उसके फलों का धन्यवाद किया और अपने घर को वापिस लौटे।

डा. जस्ट ने अनुभव किया कि उनके रोग का उपचार अंजीर का फल, लंबी पदयात्रा और झरने का पानी तथा शहर की दूषित वायु के स्थान पर जंगल की साफ सुथरी वायु है। इसके पश्चात् डा. जस्ट दवाई के स्थान पर उपवास और प्राकृतिक आहार अपने रोगियों को देने लगे। उनके इलाज से असाध्य रोगी भी स्वस्थ होने लगे। उन्हें शरीर की संरचना तथा कार्य प्रणाली का तो ज्ञान पहले ही था अब उन्होंने प्राकृतिक इलाज प्रारम्भ किया। जिसके लिये उन्होंने आदिवासियों के रहन-सहन, खान-पान, जीवनचर्या तथा प्राकृतिक इलाज का गहरा अध्ययन किया। वे इस परिणाम पर पहुँचे कि ज्यों-ज्यों मनुष्य प्रकृति से दूर होता गया वह रोगी रहने लगा और उसकी आयु घटने लगी। इसलिये उन्होंने '**रिटर्न टु नेचर**' पुस्तक लिखी, जिसका हिन्दी में रूपांतर **डा. विट्ठल दास मोदी**, प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र, गोरखपुर (उत्तरप्रदेश) ने किया है। यह पुस्तक पठनीय और जीवनदायिनी है।

डा. जस्ट के मतानुसार पशु और पक्षी स्वाभाविक तौर पर प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं। इसलिये वे प्रायः बीमार नहीं पड़ते। उन्हें कोई रोग लगा, खाना छोड़ देते हैं। वे रोग मुक्त हुए, खाना खाने लगते हैं। वे आवश्यकता से अधिक कभी भी नहीं खाते। पक्षी ताजा फल या अपना आहार तलाश करते हैं। पशु मल त्याग करने के पश्चात् सफाई के लिये पानी नहीं लेते। बीमार पशु का ही गुदाद्वार मल से मैला मिलेगा, स्वस्थ पशु का नहीं डा. जस्ट ने लिखा है कि जिस मनुष्य का पेट स्वस्थ है अर्थात् पेट में खराबी नहीं है उस का मल शौचादि निवृत्ति के उपरान्त गुदाद्वार पर लगा नहीं होगा, यह पहचान है स्वस्थ आमाशय, स्वस्थ आँतें, स्वस्थ जिगर की। दूसरी पहचान इसी सम्बन्ध में फ्लश शौचालय के पॉट को मल पकड़ेगा नहीं पानी डालते ही तुरन्त बह जायेगा अगर मल पॉट को चिपकता है तो समझना चाहिये कि आन्तों में मल चिपका हुआ है और मेदा खराब है।

डा. जस्ट की प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में जितना स्थान उपवास का है उतना ही अल्पाहार तथा चबा-चबा कर भोजन खाने का है। शरीर श्रम करने वाले व्यक्ति की खुराक में अन्न दालें, घी, तेल तथा चिकनाई आदि चीजों का होना जरूरी है क्योंकि उसका शरीर मेहनत मजदूरी करता है। बुद्धिजीवी व्यक्ति की खुराक में दूध, दही, फल, सब्जियाँ तथा अंकुरित अन्न तथा दालें जरूरी हैं। कच्ची सब्जियाँ तथा पके ताजा फलों तथा शीत ऋतु में सूखे मेवों को वे स्वास्थ्य के पहरेदार समझते हें। दूध को वे सम्पूर्ण आहार मानते हैं धारोष्ण दूध के वे बहुत हिमायती हैं। मांसाहार को वे मनुष्य का आहार मानने को तैयार नहीं हैं अपितु उसे हिंसक पशुओं का आहार मानते हैं।

घुमन्तू तथा फिरन्दर अर्थात् खानाबदोश कबीलों की जीवन शैली का भी डा. जस्ट ने अध्ययन किया था। उन्होंने देखा एक कबीला चला जा रहा है। गर्भवती महिला ने कबीले की सरगना महिला को प्रसव पीड़ा की शिकायत की, बुढ़िया के संकेत पर काफिला रुका, औरतों ने जच्चा के चारों ओर सर्किल

बना लिया। गर्भवती जमीन पर लेटी और बच्चा उस के पेट से बाहर, न प्रसव पीड़ा, न करुण क्रन्दन जैसी कि शिक्षित और सुविधा सम्पन्न घरानों की महिलाएँ हॉस्पिटल में हाय हाय करके बच्चों को जन्म देती हैं। बच्चे का नाल काटा, जच्चा की नाभि पर कपड़े की पट्टी बाँधी, बच्चे को साफ किया, कपड़े में लपेटा और टोकरी में लिटाकर जच्चा कारवाँ के साथ पैदल चल पड़ी। प्रसव प्रक्रिया उन महिलाओं के लिए एक सहज स्वाभाविक क्रिया है, जिस का मुख्य कारण इन कबीलों की प्राकृतिक जीवन शैली है। वे स्त्री को भोग विलास और काम पिपासा का साधन नहीं अपितु इंसान समझते हैं।

महिला के गर्भवती होने के बाद पुरुष उससे संसर्ग नहीं करते दूसरे वे महिलाएँ शरीर श्रम से जी नहीं चुरातीं। इसलिये स्वस्थ और निरोग रहती हैं। स्वस्थ और निरोग औरत को बच्चा पैदा होते समय कष्ट नहीं होता। जिस प्रकार स्वस्थ व्यक्ति को मल त्याग के समय पीड़ा नहीं होती। लेकिन बवासीर के रोगी को मल त्याग करने में बहुत कष्ट होता है। कच्ची उम्र में वे लोग शादी नहीं करते। आदिवासी कबीलों का जीवन सादा तथा प्राकृतिक होता है। उन्हें झरनों का पानी, जंगल की प्रदूषण रहित जीवनदायिनी वायु, जंगल के फल, शहद, जड़ी-बूटियाँ खाने को उपलब्ध होती हैं। शरीर श्रम से उन्हें कभी परहेज नहीं होता वे खूब मनोरंजन करते हैं। संक्षेप में उनका जीवन प्राकृतिक है, वे प्रकृति प्रेमी हैं। प्रकृति के समीप रह कर वे सुखी रहते हैं।

डा. जस्ट स्वास्थ्य की दृष्टि से पत्थर और ईंट के मकानों को अच्छा नहीं मानते। ये मकान गर्मियों में अधिक गर्म, ठंड के दिनों में अधिक ठंडे रहते हैं। गर्मियों में ये मकान गैस छोड़ते हैं जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होती है। हवादार झोंपड़ी को वे स्वास्थ्य के लिये उत्तम मानते हैं। पहले और दूरदराज के गाँवों में अब भी कच्ची मिट्टी की दीवारें और फूस की झोंपड़ी और उसी की छत होती है ये मकान प्राकृतिक तौर पर वातानुकूलित थे। ऐसे मकान यदि आंधी और आग तथा अन्य सुरक्षा की दृष्टि से भले ही उपयोगी न हों मगर स्वास्थ्य और निरोगिता की दृष्टि से उत्तम होते हैं।

डा. जस्ट बहुत तंग और अधिक कपड़ों को शरीर के लिये हानिकारक मानते थे। वे स्वास्थ्य की दृष्टि से सर्दियों में ऊनी और गर्मियों में सूती कपड़ों को पहनना ठीक मानते थे। नॉयलान टैरीकाट तथा बनावटी रेशे के कपड़े वास्तव में त्वचा पर बुरा प्रभाव डालते हैं जिन का आज प्रचलन, फैशन की दुनियाँ में जोरों पर है। उद्योगपतियों को मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिये। ऐसे वस्तुओं का उत्पादन न करें जो मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष कुप्रभाव डालती हैं। गर्मियों में तथा गर्म देशों में सूती कपड़ा और सफेद कपड़ा शरीर की सूर्य की प्रखर किरणों से बहुत रक्षा करता है डा. जस्ट का मत है अधिक कपड़े पहनने और ओढ़ने से शरीर की सर्दी से बचने की क्षमता कम हो जाती है। लेकिन इस संबंध में आयु, स्वास्थ्य की स्थिति तथा क्षमता का अपना महत्व है।

●

''**नीरोगी काया**'' पुस्तक से साभार

स्वतन्त्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका

गतांक से आगे–

– आशा रानी व्होरा

नेपाल की विद्रोही महारानी

साम्राज्यलक्ष्मी देवी

महारानी साम्राज्यलक्ष्मी देवी पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह की समकालीन थीं। वे अंग्रेजी शासन से क्षुब्ध थीं और अंग्रेजों को अपना शत्रु समझती थीं। पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह का अंग्रेजों पर दबदबा था, यह जानकर वह रणजीत सिंह की सहायता से अंग्रेजों को देश से बाहर निकालना चाहती थीं।

महारानी साम्राज्यलक्ष्मी देवी ने महाराजा रणजीत सिंह से मिलकर अंग्रेजी शासकों से भिड़ने की योजना बनाई। पर उनके पति, नेपाल के तत्कालीन राणा राजेन्द्र विक्रम शाह, भीरु स्वभाव के थे। वे अंग्रेजों से डरते थे। राजकाज में भी कुशल न थे। अतः उन्होंने ही सारा शासन-भार संभाल रखा था। उन्हें अपने चतुर, बुद्धिमान्, बहादुर व वफादार प्रधानमंत्री भीमसेन थापा पर पूरा भरोसा था कि उनके सहयोग से वह अपने उद्देश्य में सफल होंगी।

लेकिन योजना के प्रारम्भिक चरण में ही अंग्रेज रेजीडेंट भांप गया। उसने अपनी कूटनीति चलाकर राणा को बहकाया और महारानी को उसके प्रधानमंत्री थापा से अलग करने में सफल हो गया। थापा को राजदूत बनाकर कलकत्ता भेज दिया गया। यों कुटिल रेजीडेंट महारानी पर तो अंकुश नहीं लगा पाया, राणा पर उसका जादू बखूबी चल गया। इसीलिए महारानी की योजना समय पर क्रियान्वित नहीं हो पाई।

इसके बाद भी रेजीडेंट ने विद्रोही महारानी साम्राज्यलक्ष्मी को चैन से नहीं बैठने दिया। 24 जुलाई 1837 को उनके कनिष्ठ पुत्र की हत्या कर दी गयी। यह रेजीडेंट का रचा षडयंत्र था। उसने दरबारी रणजंग पाण्डेय से महारानी को कहलवाया कि उनके शिशु की हत्या उनके भूतपूर्व प्रधानमंत्री थापा द्वारा बदले की भावना से करवाई गयी है। देशभक्त थापा को पकड़वा कर जेलखाने में डाल दिया गया। दुखित-अपमानित हो थापा ने वहीं कैदखाने में आत्महत्या कर ली।

नया प्रधानमंत्री अंग्रेजों का पिट्ठू था। उसने महारानी साम्राज्यलक्ष्मी को दुबारा रेजीडेंट की कुटिल चाल में फँसा लिया और बहकावे में आकर नारी-सुलभ कमजोरी से बड़ी रानी व छोटी रानी में ठन गयी। इसमें छोटी रानी सफल रही और बड़ी रानी साम्राज्यलक्ष्मी को अपना शेष जीवन काशी जाकर निर्वासित रूप में बिताने के लिए नेपाल छोड़ना पड़ा।

परन्तु रेजीडेंट के षडयंत्र ने यहाँ भी महारानी का पीछा नहीं छोड़ा। उनके सहायकों के साथ कुछ ऐसे दरबारी भी मिलाकर भेजे गये, जिन्होंने काशी जाते समय मार्ग में ही तराई में उन्हें विष दे दिया। वहीं 1841 में उनकी मृत्यु हो गयी।

अंग्रेजों की चाल सफल हुई। उन्हें भय था कि कहीं महारानी फिर न लौट आएं और दूसरे लोगों को साथ लेकर फिर न कुछ करें। बाद में भी नेपाल के राजा गुलामी के बावजूद अंग्रेजों के मित्र बने रहे।

तभी तो 1857 के प्रसिद्ध क्रांतिकारियों- नाना साहब, बेगम हजरत महल, महारानी तपस्विनी आदि को नेपाल में शरण लेते समय बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा था।

महाराणा रणजीत सिंह की वीर पत्नी

महारानी जिन्दां

महारानी जिन्दां पंजाब केसरी महाराजा रणजीत सिंह की सबसे छोटी रानी थीं। वीरता और तेज की वह मशाल, जिसकी लौ को तेजी से भभकने का अवसर नहीं मिला। वह और उनका अबोध बेटा विश्वासघाती दरबारियों के षडयंत्र और अंग्रेजों की कूटनीति के शिकार हो गए।

कूटनीति का सहारा ले अंग्रेज धीरे-धीरे सभी राज्यों को अपने आधीन करते जाते थे। लेकिन महाराजा रणजीत सिंह के जिन्दा रहते पंजाब की ओर आँख उठाकर देखने का साहस किसी में न था। 1839 में उनकी मृत्यु के बाद पंजाब गृहयुद्ध की चपेट में आ गया। महारानी जिन्दां ने शासन-सूत्र अपने हाथ में लेने की कोशिश की, क्योंकि राजकुमार दिलीपसिंह अभी नाबालिग था। रानी राज-काज के लिए सब तरह से योग्य थीं। पर उनके मंत्रियों और कुछ अधिकारियों ने उनके साथ विश्वासघात किया। वे लोभी बन भ्रष्टाचार में लिप्त हो गए और कुचक्र रचकर राजकोष खाली करने लगे। इस तरह परोक्ष रूप में उन्होंने अंग्रेजों की सहायता की। उन्हें पंजाब को हड़पने के लिए बहाना मिल गया।

महारानी जिन्दां ने अपने पुत्र दिलीप सिंह को गद्दी का वारिस घोषित किया, उसके वयस्क होने तक स्वयं राज्य की बागडोर संभाल अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने के लिए कटिबद्ध हो गईं। पर अभी वह योजनाएं ही बना रही थीं कि पंजाब पर संकट के बादल मंडराने लगे। उनके अपने ही लोगों द्वारा अंग्रेजों को खबर पहुँचा दी गई। अंग्रेजों ने महारानी पर अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ षड्यंत्र रचने का आरोप लगा उन्हें गिरफ्तार कर लिया। इस घटना ने जनता को तो क्षुब्ध किया ही, उनके वफादार सेनापति शेरसिंह को भी बहुत उत्तेजित कर दिया। पर रानी का प्रधानमंत्री आरम्भ से ही भीतर से रानी के साथ न था। उसने समय पर धोखा दिया। इसलिए जनता का क्रोध जन-आन्दोलन का रूप नहीं ले सका। शेरसिंह अकेला पड़ जाने से आत्मबलि देने के सिवाय कुछ न कर पाया।

सेनापति की मौत के बाद रास्ता और साफ हो गया। अंग्रेजों ने अवसर का लाभ लिया और दिलीप सिंह को फुसलाकर अपने वश में कर लिया। मई 1843 में महारानी को देश निकाला देने का आदेश-पत्र तैयार कर उस पर अबोध दिलीप सिंह के हस्ताक्षर करवा लिये। शेखूपुरा की जेल में बन्दी महारानी जिन्दां ने पुत्र के हस्ताक्षर पहचान, आज्ञापत्र को कड़वे घूंट की तरह स्वीकार तो कर लिया, पर वह अगले अवसर की तलाश में भीतर ही भीतर तिलमिलाने लगीं। इस समय वह कुछ कर नहीं सकती थीं। उन्हें काशी-जेल में भेज दिया गया। वहाँ से कड़े पहरे के बावजूद 1849 में वह कैसे निकल भागीं और नेपाल पहुँच गईं, इस कहानी पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। केवल बाद में उनके नेपाल निवास और वहाँ से पंजाब के अपने लोगों से गुप्त सम्बन्ध स्थापित कर पंजाब वापस लेने की उनकी गुप्त योजना, जो सफल नहीं हो सकी, के बारे में प्रमाण मिले हैं।

उधर राजकुमार अंग्रेजों की गिरफ्त में था, इधर रानी से सम्पर्क रखने वाले लोग भी पकड़ लिये गये थे।

ग्यारह वर्षीय किशोर दिलीप सिंह को फुसलाकर अंग्रेजों ने उसे गद्दी से उतार दिया था। उनकी सारी धन-सम्पत्ति हड़प ली गई थी। उसके लिए मासिक पेंशन बांध दी गई थी। नासमझ होने से दिलीप सिंह ये सारी बातें स्वीकार करता गया, क्योंकि मां दूर थी व दरबारी भी उसे गलत सलाह देकर गुमराह कर रहे थे। उसे ईसाई धर्म की शिक्षा देकर ईसाई बना लिया गया और फिर पढ़ने के लिए इंग्लैण्ड भेज दिया गया। जब दिलीप सिंह वयस्क हुए, तब उन्हें अंग्रेजों की कटु चालों का आभास हुआ। पर तब तक बहुत देर हो चुकी थी। उन्हें हिन्दुस्तान लौटने की अनुमति नहीं दी गई, न उनकी मां को ही अपने बेटे से इग्लैण्ड में आकर मिलने की। समझ आने पर दिलीप सिंह ईसाई धर्म छोड़ फिर से सिख बन गए। पर पंजाब को फिर से आजाद कराना अब उनके वश में न रहा। रानी जिन्दां भी तभी उनके पास आ सकीं, जब वृद्धावस्था में उनकी आँखें नहीं रहीं। अन्धी हो जाने के बाद अब वह क्या कर पाएंगी, यह सोचकर ही उन्हें इंग्लैण्ड में दिलीप सिंह के पास जाने की अनुमति प्रदान की गई। यदि वह पहले जा पातीं या दिलीप सिंह ही हिन्दुस्तान आ पाते, तो शायद कुछ हो सकता था। पर अबोध दिलीप सिंह के अंग्रेजों के वश में हो जाने से रानी की सारी योजनाएं धरी रह गयीं। आँखें खोकर ही वह इंग्लैण्ड पहुँचीं और वहीं सन् 1863 में उनका देहावसान हो गया।

काशी-जेल से किसी तरह निकलकर रानी जब नेपाल जा पहुँची थीं, तब पंजाब के गुरदासपुर जिले के मेहर सिंह और किशन सिंह के नेपाल में रानी से अक्सर गुप्त रूप से मिलते रहने की सूचना 1850 में लाहौर के कमिश्नर को मिल गई थी। इस अपराध के बदले दोनों को सजा दी गई थी। महाराजा खड़ग सिंह की विधवा रानी कुलवाली के एक रिश्तेदार जवाहर सिंह भी नेपाल में रानी से लगातार संपर्क बनाए हुए थे। उनका भी पता चल जाने से ब्रिटिश सरकार ने उन पर रोक लगा दी और जमानत पर ही उन्हें बाहर रहने दिया। सन् 1857-58 की क्रांति के बाद रानी ने एक बार फिर अवसर का लाभ उठाना चाहा। उन्होंने महाराजा कश्मीर को पत्र लिखकर क्रांति नेताओं- बेगम हजरत महल और नाना साहब की नेपाल में उपस्थिति की सूचना देते हुए संदेश भेजा कि वे पंजाब को मुक्त कराने के लिए पंजाब पर चढ़ाई करें। पर यह अपील उन तक पहुँची ही नहीं। रानी का पत्र बीच में ही पकड़ा गया और लिखाई पहचान ली गई। इसके बाद तो नेपाल के राणा की सहायता से रानी पर प्रतिबन्ध और कड़े कर दिए गए।

ज्ञात तथ्य है कि 1857 में आजादी की पहली संगठित लड़ाई में पंजाब के वीर सिखों ने भाग नहीं लिया। महाराणा रणजीत सिंह के बाद नेतृत्वविहीन पंजाब का विद्रोह क्रान्ति से कुछ वर्ष पूर्व ही दब गया था। राजकुमार भी विदेश से नहीं लौट सके और अधिकारियों में अंग्रेजपरस्त दरबारियों की परम्परा मौजूद थी ही। अतः इस समय भी पंजाब के सिखों को नेतृत्व नहीं मिल सका। काश रानी के पंजाब लौटने की योजना सफल हो पाती, उनके लोग पहले ही पकड़ न लिये जाते, तो पंजाब में भी जन-क्रान्ति की लहर उठ सकती थी।

● **(क्रमशः)**

हम भारत से क्या सीखें?

द्वितीय भाषण

– प्रो० मैक्समूलर

हिन्दुओं का चरित्र–

(पूर्व अंक का शेष)

कर्नल स्लीमैन के भ्रमण वृत्तान्तों से हम सब दुर्भाग्य से उतना परिचित नहीं हो सके हैं, जितना हम सब को उनसे होना चाहिये था। इनसे आपका कुछ परिचय हो जाय, इस उद्देश्य से मैं आप लोगों के समक्ष कुछ उद्धरणों को रखूँगा। कर्नल स्लीमैन ने जो कुछ भी लिखा है, वह पत्रात्मक ढंग पर है और वे सभी पत्र अपनी बहन को ही सम्बोधित करके उन्होंने लिखा है। उनके एक पत्र का नमूना देखिये-

''मेरी प्यारी बहन,

भारतवर्ष में तुम्हारे जो भी देशवासी रहते हैं यदि उनसे पूछा जाय कि इस देश में प्रवास करते हुए कौन-सी वस्तु उन्हें सर्वाधिक प्रसन्नता प्रदान करती है तो प्रत्येक दस में से नौ व्यक्ति यही कहेंगे कि वह वस्तु है उन प्रिय बहनों का पत्र जो स्वदेश में रहती हुई अपने प्रवासी भाइयों को लिखती रहती हैं। और इस प्रकार वे हमें प्रसन्न बने रहने में तो सहायिका होती ही हैं, साथ ही हमें विश्वबन्धुत्व का पाठ पढ़ाकर उत्तम प्रकार की विश्व नागरिकता की सफल शिक्षा भी देती रहती हैं। मुझे विश्वास है कि यदि हम भारत प्रवासी अंग्रेजों को अपनी बहनों के पत्र न प्राप्त होते रहें तो न तो हम उत्तम नागरिक ही बन सकें और न अपनी सरकार के उत्तम सेवक ही। बात यह है कि हम भारत स्थित अंग्रेज यहाँ या अन्यत्र जब भी कोई कार्य करने लगते हैं तो यह भावना सदैव ही हमारे साथ रहती है कि वह कार्य हमारी बहनों द्वारा प्रशंसा प्राप्त होगा या नहीं। इस प्रकार भारत सरकार के कार्यों में वे सर्वदा एक वांछनीय नियंत्रण का कार्य इस प्रकार करती रहती हैं मानों वे अवैतनिक मजिस्ट्रेट हों। मेरा विचार है कि इन बहनों को इसी दृष्टिकोण से देखना भी चाहिये।''

स्लीमैन के इन थोड़े से शब्दों में भी अंग्रेजी का स्पष्ट प्रभाव झलकता है। स्लीमैन स्वयं स्वीकार करता है कि वह पत्र लिखने में महान् आलसी है। उसने जो कुछ भी लिखा था, प्रारम्भ में उन पत्रों को इसी उद्देश्य से लिखा था कि उसकी बहन तथा उसके परिवार के अन्य सदस्यों को प्रिय एवम् मनोरंजक लगे। फिर भी उसने यह भी साथ ही साथ लिख दिया कि ''मेरी प्रार्थना है कि आप लोग इतना विश्वास अवश्य रखें कि अपने पत्रों में लिखी गयी बातों में मैंने कहीं भी कल्पना का सहारा नहीं लिया है। आप लोगों को लिखे गये विवरणों, संस्मरणों या वार्तालापों की वास्तविकता को कहीं भी मैंने नष्ट नहीं किया है। कहीं-कहीं मैंने अन्य जनों से सुनी हुई बातों को भी लिखा है, पर उनकी भी सत्यता पर मुझे विश्वास है। जो बातें मैंने स्वयं देखकर या अनुभव करके लिखी हैं, वे तो सत्य हैं ही।''

स्लीमैन ने इन पत्रों को 1844 ई. में जब

प्रकाशित करने की योजना बनायी तो उसने इस बात की लिखित आशा प्रगट की कि ''मेरी इस कृति को पढ़कर भारत प्रवासी भारत और भारतीयों को अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे और तब भारतीयों के प्रति उनका व्यवहार अधिक सहानुभूतिपूर्ण होगा।''

आप लोगों के मन में यह शंका हो सकती है और आप यह पूछ सकते हैं कि प्रोफेसर विल्सन जैसे निष्पक्ष लेखक से भी अधिक मैं भारतीय चरित्र के विषय में कर्नल स्लीमैन के मत को अधिक मान्यता क्यों दे रहा हूँ। यदि आप उक्त प्रश्न को पूछें ही तो मेरा उत्तर यही होगा कि विल्सन अधिकांश कलकत्ता में ही रहे और स्लीमैन ने भारत को भारत के गाँवों में देखा था। यहाँ मैं एक बात को स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि भारत विषयक किसी भी जिज्ञासा की शान्ति के लिये हमें ही नहीं, प्रत्येक जिज्ञासु को भारत के गाँवों में ही जाना चाहिये क्योंकि वास्तविक भारत के दर्शन हमें गाँवों में ही मिलते हैं। कर्नल स्लीमैन ने कई वर्षों तक ठगों का दमन करने को कमिश्नर के रूप में काम किया था। ये ठग लोग पेशेवर हत्यारे थे जो एक प्रकार की धार्मिकता की आड़ में हत्याएँ करके राहगीरों को लूट लिया करते थे। प्रारम्भ में इन दलों में प्रायः मुसलमान ही हुआ करते थे परन्तु बाद में कुछ हिन्दू भी इनमें शामिल हो गये थे। फिर भी अधिकांश संख्या मुसलमानों की ही थी।

इन दलों को खोज निकालने के लिये स्लीमैन को देशी आदमियों से सम्पर्क स्थापित करना पड़ा था। यह सम्पर्क परम्परा विश्वासपात्रता की सीमा तक पहुँच जाने से उसे इस बात के अत्यधिक अवसर मिले कि वह देशी लोगों के विषय में जाने, सुने और समझे।

अपने विवरणों में स्लीमैन ने यह बात जोर देकर कहा है कि जो भारत के ग्राम्य-जीवन को नहीं जानता वह भारत के बारे में कुछ भी नहीं जानता। हम वर्णन की सुविधा के लिये इन्हें गण कहेंगे। हम जानते हैं कि भारत के गाँव जिस प्रकार भारतीय विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं, वैसा किसी भी अन्य देश में नहीं है। भारतीय राजाओं महाराजाओं एवं सम्राटों की बात पढ़ कर हमारा यह सोचना यद्यपि स्वाभाविक है, पर सत्य नहीं कि भारत में भी प्राच्य देशों के ही ढंग का राज्यतंत्र था और जिस स्थानीय एवं प्रांतीय स्वतंत्रता का हम अंग्रेज लोग अभिमान करते हैं, उसका नाम भी भारत में नहीं था। जिन लोगों ने सावधानी से भारत के राजनैतिक जन-जीवन के विषय में अध्ययन किया है, उनका भी मत उपरोक्त स्वाभाविकता के विरुद्ध है।

अति प्राचीन काल से ये गाँव ही भारत के शासन की इकाई रहते आये हैं। यह सही है कि भारत ने अनेक आक्रमणकारियों को देखा है। अनेक आक्रामकों एवं आक्रामक जातियों से अनेक बार वह पादाक्रान्त भी हुआ है। लम्बे विदेशी-शासन के दिन भी भारत ने एकाधिक बार देखा है, परन्तु गाँवों की यह प्रधानता सदैव ही अक्षुण्ण रही है। गाँवों का जन-जीवन इन आक्रमणों एवं लम्बे विदेशी शासनों की अग्नि परीक्षा में भी बचा ही रह गया है। अधिक से अधिक इतना ही हुआ है कि कभी ये इकाइयाँ किसी विशेष उद्देश्य से होकर समूह रूप में हो गयी

हैं या बना दी गयी हैं। इस प्रकार के ग्राम-समूहों को भारतीय साहित्य में ग्राम जाल कहा गया है। ये ग्राम जाल भी हस्तान्तरित अधिकारों को भोगते हुए सम्पूर्ण एवं अधिकांश में बाह्य नियंत्रण से स्वतंत्र ही रहते थे। आप मनु द्वारा लिखित मनुस्मृति को देखें। उसमें आपको ऐसे कर्मचारियों के पदों के नाम मिलेंगे, जो दस, बीस, सौ या सहस्र ग्रामों का शासन प्रबन्ध करने के लिये नियुक्त होते थे परन्तु इससे आप यह न समझ लें कि ये अधिकारी आजकल के राज्यपालों की तरह होते थे, ऐसी बात नहीं थी। वास्तव में ये कर्मचारी प्रायः लगान वसूली के लिये तथा ग्रामीण जनता के शिष्टाचार की देखभाल के लिये ही होते थे। ग्रामों के आन्तरिक शासन में उनका कोई भी हाथ नहीं होता था। बाद में चलकर भी भारतीय साहित्य में अट्ठारहवीं, बयालीसवीं तथा चौरासी नाम के परगने मिलते हैं, परन्तु वे ग्राम जाल राजनैतिक इकाई न होकर आर्थिक इकाई ही हुआ करते थे। हिन्दुओं के लिये, मेरा मतलब है कि प्रति सौ में 99 हिन्दू के लिए उसका गाँव ही उसका संसार होता था, जिसे जनमत कहा जाता है और उसका क्षेत्र भी कदाचित् ही एक गाँव से बाहर जाता था।

कर्नल स्लीमैन ही सर्वप्रथम अंग्रेज था जिसने इन गुणों को देखा और लोगों का ध्यान भी इधर आकर्षित किया। उसी ने गाँवों के उस महत्त्व को समझा जो देश के शासन प्रबन्ध में इन गाँवों का होता था। गाँवों का यह महत्त्व अति प्राचीनकाल से चला आ रहा है। आगे हेनरी माएन के प्रयत्नों से हमारी एतत्सम्बन्धी जानकारी काफी बढ़ी है, फिर भी कर्नल स्लीमैन द्वारा लिखे गये पत्रों की उपयोगिता कुछ अधिक ही है, क्योंकि उनसे हमें एक शिक्षा मिलती है। उसने एक निरीक्षक की हैसियत से लिखा है और उस पर किसी भी ऐसे सिद्धान्त का प्रभाव नहीं है जो सामान्य आर्यों के राजनैतिक जीवन के विकास का सम्यक् निरूपण करता है।

हमने ऊपर की पंक्तियों में जो कुछ कहा है, उसका यह तात्पर्य नहीं है कि कर्नल स्लीमैन ही वह प्रथम व्यक्ति था जिसने इस बात पर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया कि समूचा भारत इन छोटे-छोटे गाँवों में ही रहता है। मेगस्थनीज नामक यूनानी राजदूत चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में रहने के लिये यूनानी सेनापति सिल्यूकस नाइकेटर द्वारा भेजा गया था। उसका समय ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी है। मेगस्थनीज ने भी भारत को जैसा कुछ देखा, सुना और समझा था, उसका पूरा-पूरा विवरण लेखबद्ध किया है। उसकी दृष्टि भी इस तथ्य पर पड़ी थी। उसने भी लिखा है कि प्रायः यहाँ के लोग अपने बाल-बच्चों के साथ देहातों में ही रहना पसन्द करते हैं और नगरों की ओर जाने की जैसे उनमें कोई इच्छा ही नहीं होती। नियारकस का कहना है कि ये सभी लोग आपसी सहयोग से खेती-बारी करते थे। स्लीमैन ने जिस बात की ओर सर्वप्रथम संकेत किया था वह यह है कि भारतीयों के जन्म जात गुण उनके निजी गाँव से ही सम्बन्धित एवं मर्यादित होते हैं।

● **(क्रमशः)**

अर्जुनरावणीयम्

द्विगुपादे (द्वितीयाध्याय-चतुर्थपादे)

गतांक से आगे–

डा0 विजयपाल शास्त्री, प्रवाचक
राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानम्, जयपुर

यस्य प्रभावसंविग्ना वनान्तरविचारिणः।
अरातयस्सह स्त्रीभिर्मधुनः संस्मरन्ति न॥37॥

अन्वयः– यस्य प्रभावसंविग्नाः स्त्रीभिः सह वनान्तर-विचारिणः अरातयः मधुनः न संस्मरन्ति।

अर्थ– जिसके प्रभाव (प्रताप) से उद्विग्न हुए तथा स्त्रियों के साथ वन में भटकने वाले शत्रुगण मधु (आसव) की याद नहीं करते हैं। अर्थात् उस राजा के साथ विरोध करने से संकटग्रस्त हुए वे मदिरा पीना भूल गए।।37।।

चक्राह्वयूथान् दधती हंसयूथानि यत्पुरे।
रेवा राजति भक्त्या वाऽऽचिता चन्दनकुङ्कुमैः॥38॥

अन्वयः– यत्पुरे चक्राह्वयूथान् हंसयूथानि (च) दधती रेवा चन्दन-कुङ्कुमैः भक्त्या आचिता वा राजति।

अर्थ– जिसकी नगरी में चक्रवाक-यूथों व हंस-यूथों को धारण करने वाली रेवा-नर्मदा ऐसी प्रतीत होती है मानो चन्दन-कुंकुमों द्वारा की गई पत्ररचना से व्याप्त हो।।38।।

क्षपयत्यशुभं कर्म कर्माणं चिनुते शुभम्।
रेवा या सपदि स्नानात् पूता सुरनदीसमा॥39॥

अन्वयः– या सुरनदी-समा पूता रेवा स्नानात् सपदि अशुभं कर्म क्षपयति, शुभं कर्माणं चिनुते।

अर्थ– उस राजा की नगरी के पास से बहने वाली नर्मदा देवनदी गङ्गा के समान पवित्र है। वह नदी स्नान द्वारा शीघ्र ही अशुभ कर्म को नष्ट कर देती है तथा शुभ कर्म सञ्चित कर देती है।।39।।

समृद्धिं परिपश्यद्भिर्धनदस्येव मानवैः।
पद्मः शङ्खश्च वशगावस्येति भुवि निश्चितम्।40।

अन्वयः– भुवि धनदस्य इव अस्य समृद्धिं परिपश्यद्भिः मानवैः पद्मः शङ्खः च (अस्य) वशगौ इति निश्चितम्।

अर्थ– भूमि पर इसकी कुबेर जैसी समृद्धि को देखते हुए लोगों ने माना कि पद्म और शङ्ख नामक निधि इसके अधीन हैं।।40।।

कर्णाभरणशङ्खानि दधते यस्य सामजाः।
यशांसीव जयाप्तानि व्यापितान्यवतंसताम्।41।

अन्वयः– यस्य सामजाः (यानि) कर्णाभरणशङ्खानि दधते (तानि) जयाप्तानि यशांसि अवतंसता व्या (प्रा) पितानि इव।

अर्थ– इस राजा के गजेन्द्र जिन कर्णाभूषण रूप में शंखों को धारण कर रहे हैं, वे मानों विजय द्वारा प्राप्त (धवल) यश ही अवतंसता (कर्णाभरणता) को प्राप्त करवा दिए हैं। यहाँ उत्प्रेक्षालङ्कार है।।41।।

32. इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ- अस्मै ददध्वं तुरगानथास्मै कुञ्जरानपि।

अस्मै ददध्वं तुरगानथास्मै कुञ्जरानपि।
प्रियभृत्योऽवदद्यस्य दानशौण्डो न ताम्यति॥42॥

अन्वयः– अस्मै तुरगान् ददध्वम् अथ अस्मै कुञ्जरान् अपि (ददध्वम्) इति यस्य प्रियभृत्यः अवदत्। दानशौण्डः न ताम्यति।

अर्थ– इसे घोड़े दो और इसे हाथी भी दो (दान देते समय) इसके प्रिय भृत्य इस प्रकार बोलते थे। सच है दानवीर कभी दान देने में खिन्न नहीं होता, उत्साहपूर्वक दान देता ही रहता है।।42।।

33. एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ। तसि- एतस्मान्निर्गता कीर्त्तिरथातो बिभ्यति द्विषः।

एतस्मिंस्त्यागिता राज्ञि वसत्यत्र च पौरुषम्।
एतस्मान्निर्गता कीर्त्तिरथातो बिभ्यति द्विषः।43।

अन्वयः– एतस्मिन् राज्ञि त्यागिता वसति, अत्र च पौरुषं (वसति) एतस्मात् कीर्त्तिः निर्गता, अथ अतः द्विषः बिभ्यति।

अर्थ– इस राजा में त्यागिता (दानशीलता) रहती है तथा इसमें पौरुष (पराक्रम) भी रहता है। इससे कीर्त्ति निकली है तथा इससे शत्रु भयभीत रहते हैं।।43।।

34. द्वितीयाटौस्स्वेनः- द्वितीया- इमम्, एनम्। एतम् एनम्। टा- अनेन, एनेन। एतेन, एनेन। ओस्- एतौ, एनयोः।

इममिन्द्रसमं विद्धि मैनं मंस्थास्त्वमन्यथा।
हतो नानेन कः शत्रुः किमेनेन विरोधिना॥44॥

अन्वयः– इमम् इन्द्रसमं विद्धि, त्वम् एनम् अन्यथा मा मंस्थाः, अनेन कः शत्रुः न हतः? एनेन विरोधिना किम्?

अर्थ– हे राक्षसेन्द्र! इसे तुम इन्द्रतुल्य जानो। इसे तुम अन्यथा मत समझना (कोई सामान्य राजा मत मानना)। इसने किस शत्रु को नहीं मारा अर्थात् सभी शत्रुओं को मार गिराया है। इसे विरोधी बनाने से कोई लाभ नहीं है।।44।।

पश्यैतमीश्वरं गत्वा मा नैनं सुहृदं कृथाः।
सुहृदैतेन को दुःखी सुखी चैनेन कोऽरिणा।45।

अन्वयः– त्वं गत्वा एनम् ईश्वरं पश्य, एनं सुहृदं मा कृथाः न। एतेन सुहृदा कः दुःखी, एनेन अरिणा च कः सुखी?

अर्थ– हे लङ्केश्वर! तुम जाकर इस राजा को देखो, इससे मिलो तथा इसे अवश्य ही अपना मित्र बनाओ। इसे मित्र बनाने वाला कोई दुःखी नहीं है तथा इसे शत्रु बनाने वाला कोई सुखी नहीं है।।45।।

बाहू करिकराकारौ यावेतावस्य भूपतेः।
सहस्त्रता रणे क्षिप्रमेनयोरेव जायते॥46॥

अन्वयः– अस्य भूपतेः यौ एतौ करिकराकारौ बाहू, रणे एनयोः एव क्षिप्रं सहस्त्रता जायते।

अर्थ– इस राजा के जो हस्तिशुण्डादण्डाकार दो बाहू हैं, इन्हीं की युद्ध में तुरन्त सहस्त्रसंख्यता हो जाती है। अर्थात् युद्ध में इसकी दो भुजाएँ हजार भुजाओं के रूप में परिणत हो जाती हैं।।46।।

● **(क्रमशः)**